एकमात्र हिंदी मासिकी
अंक : ४
अप्रैल : १९८७
विवेक शिखा

विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

११. श्री पी० राम—पटना (बिहार)
१२. श्री अशोक कुमार टाँटिया—कलकत्ता (प० बंगाल)
१३. श्री धर्म पाल—नई दिल्ली (नई दिल्ली)
१४. श्री रमेश चन्द्र कपूर—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१५. श्री पलक बसु—इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश)
१६. प्राचार्य, संतगजानन महाराज कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग—शेगांव (महाराष्ट्र)
१७. श्री प्रभाकर सिंह—इलाहाबाद
१८. श्रीमती मंजु रस्तोगी · दुमका (बिहार)
१९. श्री कमल कुमार गुहा —कलकत्ता (पश्चिम बंगाल)
२०. श्री विवेक भुजंग राव कुलकर्णी —नागपुर (महाराष्ट्र)
२१. श्रीराम बिलास चौधरी—मुपौल, दरभंगा (बिहार)
२२. डा० रमेश चन्द्र प्रसाद —देवघर (बिहार)
२३. श्री मातादीन मिश्र—सारण (बिहार)
२४. एम० एम० नावालगी—कादरा (कर्नाटक)
२५. श्री हेमराज साहू—नरसिंहपुर (म० प्र०)
२६. डा० प्रकाश चन्द्र मिश्र—पटना (बिहार)
२७. श्री विनोद ब्रजभूषण अग्रवाल—नागपुर (महाराष्ट्र)
२८. श्री केशरदेव भालोटिया—जरमुण्डी (बिहार)
२९. श्री धर्मवीर शर्मा—खण्डवाया (उत्तर प्रदेश)
३०. श्री शिवशंकर सुखदेव पाटील—शेगांव (महाराष्ट्र)
३१. श्री गजानन महाराज संस्थान—शेगांव (महाराष्ट्र)
३२. श्री दया शंकर तिवारी—लाल बाजार, सीवान (बिहार)
३३. श्री राजकुमार गडोडिया—अपर बाजार (रांची)
३४. कुमारी चुक चुक —बेलगांव (महाराष्ट्र)
३५. डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण —पटना। (बिहार)
३६. डॉ० सम्पत पाटोल—भदोल (महाराष्ट्र)
३७. श्री रमाशंकर राय—वाराणसी
३८. श्री आर० के० यादव —फैजाबाद
३९. कुमारी अलपना सकलेचा – बम्बई
४०. श्री हिम्मत लाल रणछोड़दास शाह— बम्बई
४१. श्री नीरज गुप्ता—रायपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० शैल पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—६ अप्रैल—१९८७ अंक—४

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२५० रु०
वार्षिक	२० रु०
रजिस्टर्ड डाक से	३५ रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें :

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

जहाज में कम्पास का काँटा सदा उत्तर की ओर रहता है; इसीलिए जहाज की दिशा में भूल नहीं होती। इसी प्रकार, यदि मनुष्य का मन भी सदा ईश्वर की ओर रहे तो उसे संसार-सागर में दिशा चूकने का भय नहीं रहता।

(२)

तुम संसार में रहो भी तो इसमें कोई विशेष हानि नहीं। मन को सदा ईश्वर में लगाए रखकर निर्लिप्त हो संसार के कर्मों को किए जाओ। जैसे, अगर किसी की पीठ में घाव हो जाए तो वह लोगों से बातचीत या दूसरे व्यवहार आदि तो करता है, पर उसका मन सब समय उस घाव के दर्द की ओर ही पड़ा रहता है।

(३)

तुम जो वस्तु प्राप्त करना चाहते हो उसके अनुरूप साधना करो, नहीं तो कैसे होगा ? 'दूध में मक्खन है' कहकर सिर्फ चिल्लाने से मक्खन नहीं मिल जाएगा, यदि मक्खन चाहते हो तो दूध का दही जमाओ, उसे अच्छी तरह मथो, तभी मक्खन निकलेगा। इसी तरह, यदि तुम ईश्वर-दर्शन करना चाहते हो तो साधना करो, तभी उनके दर्शन पाओगे। 'ईश्वर ईश्वर' कहकर सिर्फ शोरगुल मचाने से क्या फायदा ?

(४)

इस दुर्लभ मनुष्य-जन्म को पाकर जो इस जीवन में ईश्वरलाभ के लिए चेष्टा नहीं करता, उसका जन्म लेना ही व्यर्थ है।

सम्पादकीय सम्बोधन

रामकथा सुन्दर कर तारी

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

यह चैत्र का पावन महीना है। त्रेता में इसी महीने के शुक्ल पक्ष की नवमी को भगवान श्रीरामचन्द्र का अवतरण हुआ था। हमें उनका स्मरण कर, उनका गुण गानकर अपना जीवन सार्थक कर लेना चाहिए।

श्रीराम का नाम-कीर्तन कर, उनकी पावन कथा का गायन कर हमारा जीवन धन्य हो जाता है, निस्सन्देह हो जाता है, संशयहीन हो जाता है। प्रभु के सम्बन्ध में अपने इसी जीवन में सन्देह मुक्त हो जाना, संशयहीन हो जाना परम आवश्यक है।

सन्देह अन्धकार है, अज्ञान है और सन्देहहीनता प्रकाश है, ज्ञान है। शंका बन्धन है, नि:शंकता मुक्ति। संशय 'मरा'—मरण यानी मृत्यु है और संशयहीनता 'राम' अर्थात जीवन की नित्यता, अमरता। हमारी सारी आध्यात्मिक यात्रा का, धार्मिक साधना का उद्देश्य ही है संदेह से असंदेह की ओर, संशय से असंशय की ओर संक्रमण करना। असंशय में स्थिर होना ही प्रभु में प्रतिष्ठित होना है। संदेह सागर को तैर जाना ही आनन्द के, शिव के कैलास लोक में स्थित हो जाना है।

आध्यात्मिक जीवन की सबसे कठिन समस्या है संशय से मुक्त होना। यही संशय भरद्वाज मुनि के मन को मथता है। वे मुनीश्वर याज्ञवल्क्य जी से कहते हैं—

नाथ एक संसउ बड़ मोरें। करगत बेदतत्व सबु तोरें॥

कहत सो मोहि लागत भय लाजा।

एक बड़ा संशय है, किन्तु मुझे अपना संशय कहते बड़ी लज्जा लगती है। ऐसा भरद्वाज मुनि कहते हैं। धर्म-साधना की यह एक प्रबल और जटिल समस्या है। एक तो संशय है और उसे भी व्यक्त करने में कठिनाई हो रही है, लाज लग रही है। मनुष्य का अहंकार है यह। अपनी समस्या कहने पर कहीं श्रोता की दृष्टि में छोटा न हो जाऊँ! भरद्वाज का संशय यह है कि भगवान राम कौन हैं? क्या अवध नरेश दशरथ के पुत्र, पत्नी विरह में कातर होने वाले, क्रोध में रावण का वध करने वाले राम ही वे राम हैं जिन्हें त्रिपुरारि शंकर भजा करते हैं? या वे कोई दूसरे हैं?

प्रभु सोई राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि (बाल० ४६)

याज्ञवल्क्य कहते हैं कि यह संशय मानो सनातन है।

ऐसेइ संशय कीन्ह भवानी । महादेव तब कहा बखानी ।।

ऐसा ही सन्देह भवानी पार्वतीजी ने भी किया था और भगवान शंकर ने उनका विस्तार-पूर्वक उत्तर दिया था ।

संदेह सती को भी हुआ था । आप सब जानते हैं कि एकबार श्रीराम को देखकर जब शिवजी का हृदय आनन्द से भर उठा तब—

सती सो दसा संभु कै देखी । उर उपजा संदेहु बिसेषी ।।

और संदेह क्या था ? यही कि—

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद ।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद ।। (बाल० ५०)

अर्थात् जो ब्रह्म सर्वव्यापक, मायारहित, अजन्मा, अगोचर, इच्छा रहित और भेद रहित है और जिसे वेद भी नहीं जानते वह क्या देह धारण कर मनुष्य हो सकता है ? और सती को भी अपना संदेह व्यक्त करने में कठिनाई हुई थी ।

अस संसय मन भयउ अपारा । होई न हृदयँ प्रबोध प्रचारा ।।
जद्यपि प्रकट न कहेउ भवानी , हर अंतरजामी सब जानी ।।

भवानी के मन को अपार संशय मथता रहा और किसी भी प्रकार से उनके हृदय में ज्ञान का उदय नहीं हो रहा था, तथापि उन्होंने अपने संदेह को व्यक्त नहीं किया । भरद्वाज को अपना संशय प्रकट करने में लाज लग रही थी और भवानी अपना संदेह व्यक्त नहीं कर सकीं । कैसी दारुण समस्या है ? इसी संदेह ने सती को राम की परीक्षा लेने के लिए विवश किया था । सती ने परीक्षा ली । फिर भी क्या उनका संशय मिटा ? नहीं । एक बार जब संशय अजगर की भाँति कुंडली मारकर मनोभूमि में बैठ जाता है तब वह आसानी से खिसकता नहीं । परीक्षा लेने पर भी सती का संशय नहीं मिटा । फलतः दक्ष-यज्ञ में दग्ध होना पड़ा उन्हें ।

संशय है ही दक्ष-यज्ञ का दहकता अग्नि-कुंड । संशय बुद्धि की उपज है । हर संशयवादी बौद्धिक प्राणी होता है । हर बौद्धिक प्राणी अपने को विश्व-व्यापार में दक्ष समझता है । और ऐसे बौद्धिक व्यक्ति के, दक्ष प्राणी के जीवन-यज्ञ में श्रद्धा की सती को दग्ध हो ही जाना पड़ता है । सती दक्ष-यज्ञ में जलकर पार्वती के रूप में अवतरित हुईं । अहंकार और शुष्क बौद्धिकता के अग्निकुंड में जल जाने पर हमारा जो पुनर्जन्म होगा वह निर्मल, निष्कलुष होगा, पर्वत-सा अविचल विश्वास से युक्त होगा । इसी से सती का नया जन्म पार्वती के रूप में – अकलुष, शुद्ध, निरंजन रूप में होता है । किन्तु संस्कार जल्दी मिटता नहीं पार्वती पुनः शिवजी से अपनी शंका प्रस्तुत करती हुई कहती हैं—पिछले जन्म में यद्यपि मैंने वन में श्रीराम की प्रभुता देखी थी और भयभीत होने के कारण वह बात मैंने आपसे नहीं कही थी, तथापि मेरे मलिन मन को बोध नहीं हुआ और उसका फल भी मैंने पा लिया किन्तु—

अजहूँ कछु संसउ मन मोरें । करहु कृपा बिनवउँ कर जोरें ।
कहहु पुनीत राम गुन गाथा । भुजगराज भूषन सुरनाथा ।।

'अब भी मेरे मन में संशय है। आप कृपाकर श्रीराम की पावन कथा मुझे सुनाइए।' यह है संशय की विकरालता, विशदता। भगवान शिव ने तब राम कथा की महिमा बताते हुए पार्वती से कहा कि श्रीरामचन्द्र की कथा हाथों की सुन्दर ताली है, जो संदेह रूपी पक्षियों को उड़ा देती है—

रामकथा सुन्दर कर तारी। संसय बिहग उड़ावनिहारी॥

यह बड़ी महत्वपूर्ण पंक्ति है। श्रीरामकृष्णदेव प्रायः कहा करते थे—"सुबह-शाम ताली बजाते हुए हरि का नाम गाया करो, ऐसा करने से तुम्हारे सब पाप-ताप दूर हो जाएँगे। जैसे पेड़ के नीचे खड़े होकर ताली बजाने से पेड़ के सब पंछी उड जाते हैं, वैसे ही ताली बजाते हुए हरि नाम लेने से देह रूपी वृक्ष पर से सब अविद्या रूपी चिड़िया उड़ जाती हैं।"

गोस्वामी तुलसीदास ने शिवजी के मुख से संशय को विहग कहलाया है। श्रीरामकृष्णदेव अविद्या को चिड़िया कहते हैं। दोनों में कोई भेद नहीं है। संशय अविद्या से ही उत्पन्न होता है। अविद्या ही संशय की जननी है। फिर दोनों उक्तियों से एक बात यह भी सिद्ध होती है कि अविद्या और संशय हमारा मूल स्वरूप नहीं हैं। ये आरोपित हैं। जीवन-तरु पर ये बाहर से आकर बैठते हैं। इसलिए इनका पड़ाव स्थायी नहीं है। ये उड़ जा सकते हैं, अगर हम प्रभु नाम की ताली बजाते रहें। संदेह मिट जा सकता है, यदि हम प्रभु नाम का कीर्तन करते रहें। संशय या संदेह सर्वथा महत्व हीन नहीं है। संदेह के मूल में है जिज्ञासा। सही-सही, जाँच-परख कर, वस्तु को, पदार्थ को, सत्य को जानने की आकांक्षा—बलवती इच्छा ही जिज्ञासा है। यह पहले संदेह को जन्म देती है। फिर संदेह के निवारण के लिए सर्वतोभावेन, प्राण-प्रण से साधना करने की अदम्य, धृत्युत्साह समन्वित चेष्टा भी जिज्ञासा से ही जन्म लेती है। यह प्रबल जिज्ञासा ही मनुष्य जाति के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास की जननी है। सारे वैज्ञानिक विकास के मूल में यह संदेह और जिज्ञासा ही है। यही जिज्ञासा ब्रह्मानुसंधान की ओर हमें प्रेरित करती रही है। अथातो ब्रह्म जिज्ञासा—यह हमारा सनातन लक्ष्य रहा है।

संदेह जब संदेह के लिए होता है, संशय जब केवल संशय के लिए होता है, बौद्धिक चमत्कार के प्रदर्शन के लिए होता है तब वह विनाशकारी होता है—संशयात्मा विनश्यति। किन्तु संशय जब संधान के लिए होता है, उपलब्धि की प्रेरणा से उत्पन्न होता है, सत्य के शिखर के संस्पर्श और स्वानुभूति के लिए होता है तब मंगलकारी भी होता है। जब संशय हमारा ध्येय नहीं होकर साधन बनता है तब वह हमें मुक्ति पथ की ओर तेजी से ले जाता है।

सती और पार्वती श्रद्धास्वरूपिणी हैं—'भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।' श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप श्रीपार्वती और श्रीशंकरजी की मैं वंदना करता हूँ—गोस्वामीजी कहते हैं। फिर श्रद्धा स्वरूपिणी भवानी को संशय क्यों होता है? यह संशय परम सत्य के स्वरूप को जानने की जिज्ञासा से, उद्दाम आकांक्षा से होता है। स्वयं भगवान शिव कहते हैं—

राम कृपा तें पारबति सपनेहुँ तव मन माहिं।
सोक मोह संदेह भ्रम मम बिचार कछु नाहिं॥ (१।११२)

संशय पार्वती का स्वरूप नहीं है। वह आरोपित है। एक झटके में उड़ जाने वाला है। संशय जब कुतर्क का रूप धारण करता है तभी विनाशकारी होता है। पार्वती में तर्क है, कुतर्क नहीं। इसी से जब शिवजी ने पार्वती को राम के स्वरूप का वर्णन करते हुए सगुण-अगुण का अभेद बताया तब पार्वती ने कहा—

तुम्ह कृपाल सबु संसउ हरेऊ, राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ।
नाथ कृपा अब गयउ बिषादा, सुखी भयउँ प्रभु चरण प्रसादा ॥

पार्वती का संशय दूर हुआ। राम का स्वरूप-बोध हुआ। उनके जीवन का विषाद मिटा। और वे सुखी हुईं। संशय-मुक्त होने पर यही होता है। जीवन के विषाद का, दुःख का अंधकार फटता है और परम विश्राम का, शान्ति और सुख का सूर्योदय होता है।

संशय स्वामी विवेकानन्द को भी तीव्र रूप में हुआ था। ईश्वर हैं या नहीं, यह प्रश्न उन्हें बेचैन बनाये रखता था। कितने लोगों की उन्होंने परीक्षा ली थी। और उनके हृदय की ग्रंथियाँ तब खुलीं जब श्रीरामकृष्ण के पाद-पद्मों के वे आश्रित हुए थे। वस्तुतः मानव जीवन का अन्तिम लक्ष्य समस्त तर्कों सन्देहों और संशयों के पार जाना ही है। संशय के द्वारा संशय को तोड़कर आत्म-दर्शन करना ही जीवन का लक्ष्य है। यही परमात्मा को प्राप्त करना है।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे (मुण्डक २।२।८)

"जिसको आत्म-दर्शन होता है उसकी हृदह की ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं, उसके सारे संशय दूर हो जाते हैं और कर्मों का नाश हो जाता है।"

श्रीरामकृष्ण अवतार हैं या नहीं इस संबंध में भी स्वामीजी को उसी प्रकार संशय था जैसा श्रीराम के सम्बन्ध में पार्वती को था। और गुरु-कृपा से उनका वह संशय भी दूर हुआ। श्रीरामकृष्ण के सम्बन्ध में उन्होंने अपने एक प्रसिद्ध स्तोत्र में लिखा—"संशय-राक्षस नाश महास्त्रं, यामि गुरुं शरणं भव वैद्यं।" अर्थात् श्रीरामकृष्ण संशय रूपी राक्षस को नाश करने के लिए महा अस्त्र हैं। ऐसे भव-वैद्य अपने गुरु श्रीरामकृष्ण की शरण में मैं जाता हूँ। और अपने प्रणाम मंत्र में स्वामीजी ने आप्त घोषणा की – 'अवतार वरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः।' अवतार वरिष्ठ श्रीरामकृष्ण को मेरा प्रणाम है। जो राम, जो कृष्ण वही इस बार श्रीरामकृष्ण के रूप में अवतरित हुए थे। उन श्रीरामकृष्ण की कृपा से हम सब के भी जीवन तरु पर बैठा संशय रूपी विहग उड़ जाय और हम सब निःसंशय हो जायँ— यही उनसे मेरी प्रार्थना है। जय श्रीरामकृष्ण!

श्रीरामकृष्ण संघ की अपनी पहचान

—स्वामी हर्षानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद

एक महानगरी का विशाल पथ। उस पर हजारों आ-जा रहे हैं। कोई नगर सेवा की बस पकड़ने की जल्दी में है। कोई खरीदारी कर रहा है। लेकिन हर कोई पटरी पर पड़े पत्थर से अपने को बचाते आ-जा रहा है। इमारत बनाने के ठेके की कम्पनी की ट्रक के कारीगरों ने लापरवाही से पत्थर पटरी पर ही रहने दिया है। उधर से गुजरते दो उत्साही तरुणों की उस पर दृष्टि पड़ती है। दोनों एक दूसरे के लिए अजनबी थे। लेकिन दोनों को लगा कि पटरी पर आने जानेवालों के रास्ते में पत्थर बाधक है। दोनों ने मिलकर उसे उठाया और उसे एक कोने में रख दिया ताकि पटरी पर आने-जानेवालों को कोई परेशानी न हो। उन दोनों युवकों ने जो काम किया उससे हमें सबक यह मिलता है कि हजारों जो उस पथ से आ-जा रहे थे केवल 'भीड़' बने थे, लेकिन पत्थर हटाने वाले तरुणों ने एक 'संगठन या संस्था' को रूप दिया। समान उद्देश्य की पूर्ति में दोनों का सहयोग था और उनका वह ध्येय पूरा भी हुआ।

यह संस्थाओं और सांधिक प्रयास का युग है। जीवन में कुछ हासिल करना हो तो साधारण से साधारण लोगों को भी मालूम हो गया है कि मिल्लत में ही ताकत है, संगठन में ही शक्ति है। अखिल भारतीय नापित सम्मेलन या जूते पालिश करने वालों का यूनियन आज के युग का यथार्थ है; यह उपहास की कोई बात नहीं रह गयी है।

प्राचीन समय में हमारे ऋषि-मुनियों को इस सत्य का साक्षात्कार हुआ था। उन्होंने सूत्र रूप में इसे 'संघे शक्तिः कलौ युगे' कहा भी था। 'कलियुग में सांधिक प्रयत्न में ही शक्ति है।'

वीर संन्यासी स्वामी विवेकानन्दजी पाश्चात्य जगत् की यात्रा पर निकले तो उनके सामने यह दोहरा लक्ष्य था। बुद्धदेव ने जिस प्रकार पूर्वी देशों में अपना संदेश फैलाया था, उसी तरह स्वामीजी भी पश्चिमी देशों को अपना संदेश सुनाना चाहते थे। साथ ही अपने राष्ट्र के आदर्शों के अनुरूप भारत का पुनर्निर्माण करने के लिए वे पश्चिमी राष्ट्रों से भौतिक साधन-सामग्री की सहायता चाहते थे। लेकिन इस आदान-प्रदान के लिए लगता है, उन्होंने उस समय कोई निश्चित योजना नहीं बनायी होगी। लेकिन उन देशों में सांधिक प्रयास से जो आशातीत प्रगति और समृद्धि उन्हें दिखाई दी, उसी पद्धति को यहाँ भी अपनाने का उन्होंने निश्चय किया। १ मई १८९७ ई० को कलकत्ता में एक संस्था की स्थापना के उद्देश्य से उन्होंने भगवान रामकृष्णदेव के भक्तों-शिष्यों को संबोधित करते हुए कहा—"विश्व के विभिन्न देशों में घूमने के बाद मेरे मन में यह बात पक्की हुई है कि बिना संगठन के कोई महान् ध्येय सिद्ध नहीं हो सकता।" (स्वामी विवेकानन्दजी—Complete Works—Edn. 1978, vol. VI पृ० 476) अन्यत्र उन्होंने बताया है कि 'भविष्य में भारत तभी महान् बनेगा जब यहाँ कोई व्यवस्थित संगठन होगा' (वही III पृ० 299)

भारत में अपने गुरुदेव के विचारों और आदर्शों का प्रचार करने और उनके आधार पर भारतीय समाज में नयी जागृति पैदा करने का निश्चय होते ही स्वामीजी ने रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन नाम की दो संस्थाएँ स्थापित कीं। दोनों संस्थाएँ इस समय खूब फूली-फली हैं और प्रत्येक के अधीन अनेक केन्द्र काम कर रहे हैं।

अपने गुरुदेव के आदेश से स्वामीजी ने संन्यासी

साधुओं का जो संगठन किया वे संन्यासी साधु इन संस्थाओं की धुरी बने हुए हैं। जनवरी १८८६ ई० में ही गुरुदेव ने नरेन्द्रनाथ (भावी विवेकानन्द) के नेतृत्व में बारह तरुणों को अपने हाथों गेरुआ वस्त्र दिया था। गेरुआ वस्त्र-पहने ये तरुण, संन्यास की परम्परा का पालन करते, भिक्षा माँगने निकले और गुरुदेव ने उनके द्वारा लायी भिक्षा स्वीकार भी की थी। यही रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का आरंभिक जीवन है! अगस्त १८८६ ई० में अपने गुरुदेव के महाप्रयाण के बाद उन्होंने औपचारिक ढंग से संन्यास ग्रहण किया।

अपने गुरुभाइयों के सामने स्वामीजी ने 'आत्मनो मोक्षार्थम् जगद्धिताय च' (अपनी मुक्ति और लोक कल्याण के लिए) ध्येय वाक्य रखा था। [यह केवल संन्यासी साधुओं तक सीमित न होकर रामकृष्ण-विवेकानन्द का आदर्श माननेवाले सबके लिए लागू है।]

इस ध्येय वाक्य का आशय क्या है? प्रत्येक संन्यासी साधु को चाहिए कि वह ईमानदारी, सच्चाई से, जहाँ तक बन पड़े, समन्वित अविरोधी आध्यात्मिक साधना द्वारा आत्मज्ञान प्राप्त करे। उसे यह भी आदेश दिया जाता है कि वह हर एक को ईश्वर का प्रतिरूप माने और सारे संसार की सेवा करे।

संघ के साधु-संन्यासी आध्यात्मिक सिद्धि के नवागंतुक जिज्ञासु को उसी प्रकार संरक्षण प्रदान करते हैं जिस प्रकार पौधे की रक्षा कोई घेरा करता है और उसे सही दिशा में विकसित होने का अवसर मिलता है। संघ के प्रत्येक सदस्य को किसी न किसी सेवा कार्य में प्रवृत्त होना ही है। इससे वह आलसी और स्वार्थी नहीं हो पाता। उसका हृदय विशाल होता जाता है। (हृदय की विशालता का नाम ही सच्चा धर्म है)। संन्यासी साधुओं की निःस्वार्थ और उत्तम सेवा से समाज का भी भला होता है।

इस रामकृष्ण संघ की अपनी अलग पहचान है। प्राचीन हिन्दू-संन्यासाश्रम के आदर्श हैं—ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। इन आदर्शों को अपनाते हुए संघ ने किसी विशिष्ट संप्रदाय या समुदाय या परम्परा से अपने को अलग रखा है। पाँच हजार सालों से या उससे भी पहले से हिन्दुओं ने जो भी धार्मिक आध्यात्मिक साधनाएँ की हैं उनको संघ ने आत्मसात् किया है। इतना ही नहीं, रामकृष्ण विवेकानन्द के जीवन में गोचर संन्यास-धर्म के बुनियादी नियमों का अनुसरण करनेवाले अन्य धर्मावलम्बी तथा संस्कृति के अनुयायी भी यहाँ सहज ही प्रवेश पाते हैं। सच बात तो यह कि रामकृष्ण-विवेकानन्द संस्कृति में 'पराया' पद का प्रयोग ही वर्जित है।

हिन्दू संन्यासश्राम को नये सिरे से संगठित करनेवाले आदिगुरु शंकराचार्यजी ने अपने आम्नाय पीठों के आचार्यों-शिष्यों के लिए निजी जीवन में तप और ज्ञान की अनवरत साधना पर जोर दिया तथा लोककल्याण के लिए धर्म का प्रचार करने हेतु प्रवास अनिवार्य बना दिया था। शंकराचार्य द्वारा चलायी इस स्वस्थ परम्परा को विवेकसम्मत माननेवाले स्वामीजी ने अपने संघ के संन्यासी साधुओं को भी इसके पालन का आदेश दिया। रामकृष्ण संघ इस उज्ज्वल परम्परा को बनाये रखने का सतत् प्रयास करता आया है।

प्राचीन हिन्दू संन्यासाश्रम में एकाकी जीवन पर आग्रह था। किंतु इस नवीन संन्यासाश्रम में सामूहिक जीवन बिताने और सांघिक जीवन यापन करने पर बल दिया जाता है। इससे अनेक लाभ हैं। सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि आध्यात्मिक साधना में एक दूसरे को प्रेरणा प्राप्त होगी और प्रत्येक की रही-सही कुंठाएँ दूर हो सकेंगी। सामूहिक जीवनयापन ही सबसे बड़ा अनुशासन नहीं है?

'जीव की शिवभाव से सेवा' संघ की सेवा का दर्शन है। इससे सेवा को उदात्त बनाया जा सका है। उसे आध्यात्मिक साधना का रूप प्राप्त हुआ है। अन्यथा वह समाज-सेवा मात्र रह जाती। इससे संघ के सदस्यों के व्यक्तिगत आध्यात्मिक विकास में भी सहायता सहज ही मिल जाती है।

इस सेवा में सेवाकार्य का अपना विशिष्ट दर्शन है। संघ की सेवा में समय का पालन और पोख्ता काम महत्त्वपूर्ण है। इससे देशवासियों के सामने सेवा का अनोखा आदर्श प्रस्तुत है। इसका सच्चाई से पालन होने पर स्वर्ग ही धरती पर उतर आ सकता है।

संघ मानव समाज के समग्र विकास का इच्छुक है। यह विज्ञान और यंत्रविज्ञान के नवीनतम उत्तम साधनों का और कालोचित ठोस आर्थिक सिद्धान्तों का सहारा लेकर विकास करना चाहता है। प्राचीन संन्यासाश्रम समाज से सब प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त कर लेता था, किन्तु अपने को सामाजिक जीवन से बिल्कुल अलग कर चुका था। इस माने में भी संघ की अपनी मौलिक विशेषता है।

समाज-सुधार के कार्यकलापों में संघ प्रत्यक्षतः कोई हिस्सा नहीं लेता, यह तो ठीक है। लेकिन यह शोर मचाये बिना मानव को गढ़ने और चरित्र बनाने के काम में लगा हुआ है। यह लोगों के मन में सही मूल्यों और प्रवृत्तियों के प्रति अभिरुचि पैदा कर रहा है और स्वामी विवेकानन्दजी के शब्दों में समाज में 'आमूल परिवर्तन और सुधार' लाने में उसे मदद पहुँचा रहा है।

आधुनिक भारत के देवदूत स्वामीजी असाधारण दूरदर्शी थे। उन्होंने संघ को किसी भी प्रकार के राजनीतिक आंदोलन में भाग लेने से मना कर दिया। ऐसा क्यों किया? ऐसा इसलिए किया कि संन्यासी-साधु विश्वनागरिक ही नहीं, वह देवमानव होता है। (विश्वनागरिक राजनीति के दलदल में नहीं फँसते और देवमानव राजनीति से परे हैं)। स्वतंत्रता संग्राम के आरम्भिक वर्षों में स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने वाले कुछ देशवासियों को यह निर्णय पसन्द न आया। लेकिन परवर्ती युग ने साबित कर दिया कि स्वामीजी का निर्णय बिलकुल सही था। लगभग राष्ट्र के सभी नायक स्वामीजी की उक्तियों एवं कृतियों से प्रेरित और प्रभावित हुए।

शिक्षा, रोगियों की सेवा, अकाल या प्राकृतिक प्रकोप से पीड़ितों की सेवा और उनका पुनरावास, ग्राम-कल्याण, राष्ट्र के पुनर्निर्माण हेतु युवकों का संगठन, आध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित धार्मिक-सामाजिक विचारों का प्रचार आदि क्षेत्रों में रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन विनम्र साधुओं (लेकिन रामकृष्ण-विवेकानन्द के स्वाभिमानी शिष्यों) के नेतृत्व में अत्यन्त उपयोगी कार्य में लगे हैं। इनकी अनगिणत शाखाओं में कितने लोगों को सेवा हुई है और हो रही है, इसके आँकड़े भारतीय मानदंड से भले ही बहुत प्रभावी न हो, लेकिन इतना तो विशेष प्रभावी अवश्य है कि संघ मानव के चरित्रबल के विकास में ठोस और सच्चा प्रयास करता आया है और अंततोगत्वा यही अपने देश के लिए ही नहीं, सारे संसार के लिए, बुराइयों को दूर करने का रामबाण होगा।

समाज के सुधी विचारकों और नागरिकों को चाहिए कि वे इस महान संघ और उसकी शाखाओं द्वारा हो रहे सेवाकार्यों को प्रोत्साहन दें, उनका समर्थन करें और उन्हें सहायता पहुँचाएँ। अंततः समाज ही को इसका सारा लाभ पहुँचेगा!

"यह संघ भगवान् श्रीरामकृष्णदेव का प्रत्यक्ष शरीर है और इस संघ में वे सदैव विराजमान हैं।... ...जो संघ की पूजा करते हैं, वे भगवान की ही पूजा करते हैं और जो इसे नहीं मानते, वे उनकी भी अवमानना करते हैं। × × × ज्ञान, भक्ति, योग और कर्म इन चारों की समष्टि से चरित्र गढ़ना ही इस मठ का प्रधान उद्देश्य है। इसके लिए जिन साधनाओं की आवश्यकता है, वे ही इस मठ की साधनाएँ समझी जायँगी। × × × यह नवीन युग धर्म समग्र जगत्, विशेषतः भारतवर्ष के लिए कल्याणप्रद है तथा इस नवीन युगधर्म के प्रवर्तक भगवान श्रीरामकृष्ण पूर्वकालीन युगधर्म प्रवर्तकों के पुनः संस्कृत प्रकाश स्वरूप हैं—हे मानव यही विश्वास करो, इसकी धारणा करो।"

—स्वामी विवेकानन्द

उठो ! त्याग की ज्योति जला दो

—स्वामी सत्यरूपानन्द
बेलुड़ मठ

विश्व विजयी होकर भारत लौटने पर नरकेसरी स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने प्रथम पौर्वात्य व्याख्यान में घोषणा की, 'मैं अब यह दृढ़ निश्चय पूर्वक कहता हूँ कि भारत पुण्य भूमि है, कर्म भूमि है।' स्वामीजी ने आगे कहा 'यही है वह जीवनदाता जलधारा जिससे अन्याय देशों में लाखों व्यक्तियों के हृदयों को जलाने वाली भौतिकवाद की अग्नि को बुझाया जा सकता है। मित्रो, मुझ पर विश्वास करो, यह होगा।'

लगभग एक हजार वर्ष की दासता के पश्चात हम मात्र तीन दशक पूर्व स्वतंत्र हुए हैं। हजारों देशवासियों के बलिदान के फलस्वरूप हमें यह स्वतंत्रता मिली है। किन्तु स्वतंत्रता के साथ-साथ दीर्घ दासता का दुष्परिणाम भी हमें भोगना पड़ा है। देश का दुर्भाग्यपूर्ण विभाजन हुआ। विगठनकारी अराष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ आज भी कार्यरत हैं। क्षुद्र राजनैतिक, संकुचित सामाजिक या जातिगत स्वार्थ के लिए लोग देश का अहित करने में भी नहीं चूकते। ईश्वर में विश्वास, धर्म तथा नैतिकता को पाखण्ड कहकर देश को निरे भौतिकवाद तथा भोग केन्द्रित जीवन की ओर ले जाने का कुटिल प्रयास चल रहा है। शत्रु घात लगाये बैठे हैं।

इन विकट परिस्थितियों के मध्य निराशा के क्षणों में वीर संन्यासी स्वामी विवेकानन्द की ओजस्वी वाणी हमारा आह्वान कर रही हैं, उत्तिष्ठत ! जाग्रत !! उठो जागो और तब तक बढ़ते रहो जब तक कि लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए।

यह लक्ष्य क्या है ? बलिदान ! उत्सर्ग !! आत्माहुति !!! पुण्य भूमि भारत के पुनर्निर्माण के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थ का बलिदान। अपनी सुख-सुविधाओं का उत्सर्ग ! करोड़ों देश वासियों की सेवा में आत्माहुति ! !

हम स्वाधीन भले ही हो गये हों, किन्तु देश के पुनर्निर्माण का कार्य अभी शेष है। यह कार्य नयी पीढ़ी को करना है। पुनर्निर्माण सदैव पुरानी नींव पर ही किया जा सकता है। अतः किसी भी पुनर्निर्माण की योजना के पूर्व हमें उस पुरानी नींव को खोजना होगा जिस पर कि पुनर्निर्माण करना है। यह कार्य स्वामी विवेकानन्दजी ने हमारे लिए कर दिया है। उन्होंने हमें बताया है कि भारत राष्ट्र की नींव है धर्म और आध्यात्मिकता। भारतीय जीवन का चरम लक्ष्य है मुक्ति ! अतः भावी भारत के पुनर्निर्माण की किसी भी योजना का आधार होगा धर्म और आध्यात्मिकता, तथा उसका लक्ष्य होगा मुक्ति।

जिस पवित्र भूमि के निवासियों का जीवन-लक्ष्य है मुक्ति, जिनके जीवन का प्रत्येक कर्म धर्म और आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत इस मुक्ति प्राप्त का प्रयास है, वही भूमि पुण्यभूमि है, वही भूमि कर्मभूमि है। भारत की पवित्र भूमि में सहस्रों वर्षों से यह होता आ रहा है, इसीलिए वह पुण्यभूमि है, कर्मभूमि है। इस पुण्यभूमि और कर्मभूमि के भाव को जनगण के हृदयों में जाग्रत कर उसे उनके दैनन्दिन जीवन में चरितार्थ करना ही भारत का पुनर्निर्माण है। यही मातृभूमि की सर्वश्रेष्ठ सेवा तथा अर्चना है।

भौतिकवाद की अग्नि में संसार झुलस रहा है। इसने व्यक्ति के जीवन को भोग परायण बना दिया है।

भोगवादी व्यक्ति स्वार्थी होता है, क्योंकि भोग और स्वार्थ साथ-साथ चलते हैं। स्वार्थ के कारण व्यक्ति के जीवन में प्रतियोगिता प्रतिहिंसा लोभ आदि वृत्तियाँ प्रबल हो उठती हैं। उसका विवेक लुप्त हो जाता है, फिर वह अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए उचित-अनुचित का ध्यान न रख कर सभी कुछ करने को प्रस्तुत रहता है। इस प्रकार व्यष्टि और समष्टि दोनों का जीवन कलहपूर्ण हो जाता है। यही कलह घनीभूत होकर क्षेत्रीय तथा विराट विश्वयुद्ध के रूप में विस्फोटित होता है। इन सारे दुर्भाग्यपूर्ण विनाश और अशांति के मूल में है भौतिकवादी जीवनादर्श तथा भोगपरायण जीवन। यह आदर्श इस भौतिक जगत को ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य निर्धारित करता है।

भौतिकवाद की इस ज्वाला से संसार को बचाने का उपाय क्या है? क्या है वह जलधारा जिससे भोगवाद की इस विनाशकारी ज्वाला को बुझाया जा सके?

जीवन का आध्यात्मिक आदर्श ही वह उपाय है जिससे विश्व को विनाश से बचाया जा सकता है, तथा भोगवाद में जल रहे मानव हृदय को शांति दी जा सकती है।

आदर्श तो है, किन्तु इस आदर्श की व्यावहारिकता विश्व के सामने रखनी होगी तभी विश्व इसे स्वीकार करेगा। इस आदर्श की व्यावहारिकता को प्रदर्शित करने का महान दायित्व भारतवर्ष के कन्धे पर है। आज सारा विश्व त्राणार्थी होकर भारत की आध्यात्मिकता की ओर देख रहा है। उसे भारत से बड़ी आशाएँ हैं। यदि समय रहते भारत ने विश्व की इस आशा को पूर्ण नहीं किया तो यह मानवता के प्रति अन्याय होगा जिसका दण्ड भारत को भी भोगना पड़ेगा। विश्व विनाश की विभीषिका में भारत भी अछूता न रह पाएगा। भौतिकता की विनाशकारी ज्वालाएँ उसे भी नष्ट कर देंगी।

इस दायित्व को वहन करने का गुरुभार भारत की युवा पीढ़ी पर है। व्यक्ति व्यक्ति से मिलकर ही राष्ट्र बनता है। राष्ट्र का आदर्श जब व्यक्ति के जीवन में आचरित होता है तभी वह राष्ट्रीय आदर्श के रूप में विश्व के सामने चरितार्थ होता है। जिस राष्ट्र में उस आदर्श का आचरण करने वाले व्यक्तियों की संख्या जितनी अधिक होती है, वह राष्ट्र उतना ही आदर्शवान होता है। अत: व्यक्ति का आदर्श जीवन यही राष्ट्र की इकाई है। नींव है।

अपने महान दायित्व का वहन करने के लिए भारत के नव युवकों को यह चुनौती स्वीकार करनी है। अपने व्यक्तिगत जीवन में उन्हें इस आध्यात्मिक आदर्श को वरण करना होगा। यह आदर्श क्या है? ऋषि विवेकानन्द ने मानो एक महा मंत्र के रूप में हमारे सामने यह आदर्श रखा है। वह महा मंत्र है "आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च" अपनी मुक्ति तथा जगत के कल्याण के लिए अपना जीवन समर्पित कर दो। यही वह आदर्श है जिसे भारत को विश्व के मानव समाज के सामने रखना है, जिसे भारतीय जनसमाज में पूर्णरूपेण चरितार्थ करना है। यह आदर्श भारतीय जन जीवन में पूर्णरूपेण चरितार्थ होगा तभी विश्व का मानव समाज इसे ग्रहण करेगा और तभी, केवल तभी विश्व को महा विनाश से बचाया जा सकेगा।

इस आदर्श को व्यक्तिगत जीवन में चरितार्थ करने के दो उपाय हैं—पवित्रता और त्याग। मनसा वाचा कर्मणा पवित्र हुए बिना आध्यात्मिक जीवन तथा मुक्ति की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अत: पवित्र होना होगा। बाह्य तथा आंतरिक शुद्धि के द्वारा जीवन में पवित्रता आती है इसलिए शरीर तथा अपने व्यवहार की सभी वस्तुओं और अपने आसपास के वातावरण को सदैव शुद्ध रखना होगा। स्वयं स्वच्छ और शुद्ध रहकर ही हम दूसरों को शुद्ध स्वच्छ रहने की प्रेरणा दे सकते हैं।

दूसरी अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है—मानसिक शुद्धि। वास्तव में मानसिक शुद्धि के द्वारा ही व्यक्ति पवित्रता में प्रतिष्ठित होता है तथा पवित्रता में प्रतिष्ठित होने

पर ही चरित्र बनता है। पवित्रता ही वह दृढ़ आधार है जिस पर चरित्र का महान सौध खड़ा होता है। चरित्रवान व्यक्ति ही राष्ट्र की सभी सेवाएँ कर सकता है। उसी के द्वारा वास्तव में जगत-हित हो सकता है—अन्य किसी के द्वारा नहीं।

मानसिक शुद्धि के उपाय को यदि एक शब्द में व्यक्त करना ही तो वह होगा—आत्म-संयम। इन्द्रिय-निग्रह मानसिक शुद्धि और पवित्रता का प्राथमिक सोपान है। अतः सतत अभ्यास द्वारा हमें इन्द्रिय निग्रह की साधना करनी होगी। व्यवस्थित तथा नियमित जीवन यापन करना होगा। इसके साथ ही साथ मन पर भी नियंत्रण करने का अभ्यास करना होगा। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि नैतिक गुणों का अपने जीवन में पूर्ण विकास करना होगा। इन उपायों के द्वारा ही हम 'आत्मनो मोक्षार्थ' के लिए प्रस्तुत हो पाएँगे।

किन्तु यह सिक्के का एक पहलू हुआ। दूसरा उतना ही महत्व पूर्ण पहलू है—'जगद्धिताय च।' आदर्श के इस पक्ष का आचरण त्याग और सेवा के द्वारा होता है। हृदय की पवित्रता त्याग और सेवा के रूप में ही तो प्रकट होती है।

स्वार्थ व्यक्ति के चरित्र का सबसे बड़ा शत्रु है। अत: हमें व्यक्तिगत स्वार्थों को त्यागना होगा, उनसे ऊपर उठना होगा। स्वार्थ के त्याग का उपाय है परार्थ जीना। स्वामी विवेकानन्दजी ने हमें एक और मंत्र दिया "दूसरों के लिये जिओ।" यही जगतहित का अमोघ उपाय है। निःस्वार्थता जब सेवा में चरितार्थ होती है तभी वह व्यावहारिक तथा उपयोगी होती है। अतः आध्यात्मिक आदर्श की प्राप्ति के लिए हमें सेवापरायण होना होगा। सेवा के विभिन्न आयाम हैं। उन सबको तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) आध्यात्मिक सेवा
(२) बौद्धिक सेवा
(३) पदार्थ मूलक सेवा।

मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ सेवा है उसकी आध्यात्मिक सहायता करना, उसे आध्यात्मिक ज्ञान देना, आत्मानुभूति के पथ पर उसे अग्रसर करना। किन्तु यह आध्यात्मिक सेवा वही कर सकता है जो स्वयं आध्यात्मिक अनुभूति संपन्न हो। ऐसे आध्यात्मिक महापुरुष अति विरल हैं। वे स्वयं संसार के लिए आदर्श हैं, उन्हें किसी आदर्श की आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः हम सभी के जीवन का प्रयोजन ही है इस प्रकार की आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करना।

द्वितीय श्रेणी की सेवा है—बौद्धिक सेवा। बौद्धिक सहायता देकर व्यक्ति को आत्मोन्नति के मार्ग पर बढ़ाया जा सकता है। उसके दुःख दारिद्र्य को दूर किया जा सकता है। अज्ञान हमारे सभी दुखों की जड़ है। बुद्धि का प्रकाश अज्ञानान्धकार को दूर कर हमारे लिए उन्नति का पथ खोल देता है।

बौद्धिक सेवा करने के लिए हमें स्वयं बुद्धिबल अर्जित करना होगा। उचित शिक्षा, प्रशिक्षण तथा कड़े परिश्रम द्वारा यथेष्ट ज्ञान प्राप्त कर स्वयं को इस योग्य बना लेना होगा कि जिससे हम अज्ञानान्धकार में भटक रहे लोगों को ज्ञान देने में सहायक हो सकें।

अशिक्षा हमारे देश का एक बहुत बड़ा अभिशाप है। इसके कारण करोड़ों व्यक्ति दुःख भोग रहे हैं। उचित शिक्षा मिलने पर वही लोग उन्हीं परिस्थितियों में अपेक्षाकृत उन्नत और सुखी जीवन बिता सकते हैं। अतः शिक्षित व्यक्तियों का यह कर्त्तव्य है कि अपने आस पास के लोगों में जहाँ भी अशिक्षा है उसे दूर करने का संकल्प लें, यह व्रत लें कि हम अपनी शक्ति के अनुसार निस्वार्थ भाव से त्याग पूर्वक शिक्षा दान करेंगे। हमने जो शिक्षा पायी है, प्रशिक्षण पाया है उसका मुक्त हस्त से वितरण करेंगे। स्वयं कष्ट सहकर भी दूसरों की शिक्षा में सहायक होंगे। शिक्षा तथा उसके उपकरणों द्वारा शिक्षार्थी की यथा साध्य सेवा करेंगे।

तीसरी श्रेणी की सेवा है—पदार्थ मूलक सेवा। अन्न,

वस्त्र, औषधि, धन आदि के द्वारा दीन दुखियों की सेवा। कष्ट और विपत्ति में पड़ हुए लोगों को आवश्यक वस्तुएँ दे कर उनके दुःख दूर करने की चेष्टा।

निस्संदेह पदार्थ मूलक सेवा आवश्यक तो है किन्तु वह पर्याप्त नहीं है। क्योंकि पदार्थ मूलक सेवा अल्प-स्थायी होती है। एक भूखे व्यक्ति को भोजन देकर तत्काल उसे भूख की ज्वाला से बचाया तो जा सकता है, किन्तु एक बार भोजन देकर उसकी समस्या का समाधान नहीं किया जा सकता। स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक खाद्य उसे पर्याप्त मात्रा में जीवन पर्यन्त मिलता रहे इसकी व्यवस्था करनी होगी। इस व्यवस्था के लिए उस व्यक्ति को उचित शिक्षा देना आवश्यक है जिससे कि वह स्वयं अपनी जीविका उपार्जन कर सके। यह कार्य केवल पदार्थ मूलक सेवा और सहायता से संभव नहीं है। वही सेवा दीर्घस्थायी हो सकती है जो कि दीर्घ काल तक व्यक्ति के अभावों को दूर करने में समर्थ हो। किन्तु इस दीर्घस्थायी सेवा का आरंभ अल्पस्थायी पदार्थ मूलक सेवा से ही होता है। पदार्थ मूलक सेवा करने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को सीमित रखें, संग्रह न करें, अपरिग्रह का अभ्यास करें। क्योंकि आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का उपयोग करना या उनका संग्रह करना उतनी ही मात्रा में अन्य लोगों को उससे वंचित करना है। स्वयं मितव्ययी और अपरिग्रही हुए बिना हम कभी भी किसी की उचित रूप में सेवा नहीं कर पायेंगे।

हमारा यह सौभाग्य है कि हमें इस युग में कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है जब कि संपूर्ण मानव-जाति ही संक्रान्ति के उस दौर से गुजर रही है जहाँ उसका अस्तित्व ही संकट में पड़ गया है। इस महान संकट से मानव जाति को वही लोग मुक्त कर सकते हैं जिनके हृदय में त्याग की अखण्ड ज्योति जल रही है, जिनका चरित्र पवित्रता की पावन सुरभि से सुगंधित हो उठा है तथा जिनकी हृदय-गंगोत्री से निःस्वार्थ-सेवा की कर्म-गंगा अविरल बह रही है।

अमूर्त विवेकानन्द की मूर्त वाणी आज हमारा आह्वान कर रही है—आइए, नरनारायण की सेवा के महायज्ञ में अपने स्वार्थ की, कामना-वासनाओं का आहुति देकर, इसी जीवन में हम भी मुक्त हो जाएँ।

□

आध्यात्मिक जीवन में अभ्यास का स्थान

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

जब भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपने चित्त की वृत्तियों को एकाग्र कर योगी बनने को कहा, तो अर्जुन ने एक बहुत ही समीचीन प्रश्न किया। उसने कहा कि जिस योग का आदेश आपने दिया है, उसमें स्थिर रहना मैं कठिन समझता हूँ। मन तो चंचल क्षोभकारी, बलवान और दृढ़ है, वायु के निग्रह की तरह उसका निग्रह मैं अत्यन्त दुष्कर समझता हूँ। मन की चंचलता और दुर्निग्रहता को स्वीकार करते हुए भगवान कहते हैं कि फिर भी अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा उसका निग्रह किया जा सकता है। अर्जुन उवाच :—

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन।
एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिराम्॥

चंचलं ही मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

श्रीभगवानुवाच:—असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥
(गीता—६, ३३-३५)

पंतजलि के अनुसार भी, विभिन्न प्रकार की चित्तवृत्तियों के निरोध के दो प्रमुख उपाय, अभ्यास और वैराग्य है। "अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः॥" १-१२। इस सूत्र पर भाष्य करते हुए व्यास देव कहते हैं कि चित्त रूपी नदी दो दिशाओं में वहती है, एक विषयों की दिशा में होकर पाप की ओर और दूसरी विवेक की दिशा से होकर कल्याण की ओर। वैराग्य द्वारा पाप की ओर चित्त नदी का बहना वन्द किया जाता है, और अभ्यास के द्वारा उसे कल्याण की ओर प्रवाहित किया जाता है।

अभ्यास और वैराग्य, आध्यात्मिक जीवन के इन दो महास्त्रों का विस्तृत अध्ययन करने के पूर्व एक छोटे से, किन्तु महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक है। क्या अभ्यास अथवा वैराग्य, केवल एक से चित्तवृति निरोध नहीं हो सकता? क्या दोनों ही आवश्यक हैं? इसका स्पष्ट उत्तर है—हाँ, दोनों ही आवश्यक हैं। वैराग्य के अभाव में एकाग्रता का अभ्यास खतरनाक है एवं इष्ट चिन्तन रूप एकाग्रता के अभाव में वैराग्य जीवन में नीरसता एवं शुष्कता को पैदा करता है। वैराग्य के अभाव में अभ्यास अंधा है, तथा अभ्यास के अभाव में वैराग्य लूला है। वैराग्य साधना को दिशा प्रदान करता है और अभ्यास शक्ति प्रदान करता है। वैराग्य के अभाव में बलपूर्वक बहिर्गामी मन के निरोध से वासनाएँ अचेतन मन में दब जाती हैं, तथा नाना शारीरिक एवं मानसिक रोगों एवं कुण्ठाओं का कारण बन सकती हैं। ऐसे में मन को एकाग्र करने में असफल होने पर साधक या तो पूर्ण रूप से निराश होकर साधना ही त्याग देते हैं या फिर कोई-कोई आत्म हत्या तक कर डालते हैं। यदि सफलता प्राप्त भी हो और यदि अहंकार, विषयासक्ति और भोग लिप्सा बनी रहे तो यह असुरत्व का रूप लेकर संसार का अकल्याण करेगा। वाणासुर ' रावण, हिरण्यकशिपु आदि इस वैराग्य रहित अभ्यास के उदाहरण हैं। यही कारण है कि सभी आचार्य चित्तशुद्धि, पवित्रता एवं वैराग्य के विना अभ्यास को प्रोत्साहित नहीं करते।

मात्र वैराग्य एक नकारात्मक सद्गुण है। भगवदनुराग अथवा सत्यानुसन्धान रूप प्रयत्न के विना वह साधक को पलायनवादी, एकांगी एवं असन्तुलित बना देगा। उसके जीवन की शुष्कता एवं संसार के प्रति अस्वाभाविक उदासीनता स्वयं के लिए भार स्वरूप हो जाएँगी। यही कारण है कि अभ्यास तथा वैराग्य दोनों ही मोक्ष मार्ग के पथिक के लिए आवश्यक हैं।

अभ्यास—

एक दिन श्रीरामकृष्ण सर्कस देखने गये। वहाँ उन्हें दौड़ते घोड़े की पीठ पर एक पैर से खड़ी मेम का करतब बहुत अच्छा लगा। घोड़ा सर्कस के घेरे में तेजी से बीच बीच में रखे लोहे के तार से बने गोलों के बीच से कूदता हुआ दौड़ता है। हर बार मेम घोड़े की पीठ पर उछलती है और पुनः एक पैर से ही घोड़े की पीठ पर खड़ी हो जाती है। इस खेल को देखने के बाद जब कोई भक्त भगवान में मन लगाने का, संसार में रहते हुए भी मुक्ति का, उपाय पूछता तो श्रीरामकृष्ण सर्कस की मेम का उदाहरण देते हुए कहते कि जिस प्रकार लगन एवं दीर्घकाल के अभ्यास से उस युवती ने दौड़ते घोड़े पर एक पैर से खड़ा होने में दक्षता हासिल की, उसी प्रकार अभ्यास के द्वारा संसार में रहते हुए भगवान में मन लगाया जा सकता है।

अभ्यास कहते किसे है?

पंतजलि के अनुसार चित्त वृत्ति निरोध की स्थिति में मन को बनाये रखने के प्रयत्न को अभ्यास कहते है। "तत्र स्थितौयत्नोऽभ्यासः" १:१२। स्थिर आसन में बैठकर, मन

को एक देश विशेष में निबद्ध कर केवल एक प्रत्यय प्रवाह बनाये रखने का प्रयत्न,—दूसरे अर्थों में धारण एवं ध्यान के द्वारा मन की चंचलता को शान्त कर केवल इष्ट का ही चिन्तन बनाये रखने का प्रयत्न अभ्यास कहलाता है। वस्तुतः अभ्यास अत्यन्त व्यापक अर्थ वाला शब्द है। चित्त वृत्ति निरोध रूप योग के उद्देश्य से अनुष्ठित यम नियमादि बहिरंग अथवा धारणा, ध्यान, समाधि रूप अन्तरंग साधनों आदि सभी का बारम्बार अनुष्ठान अभ्यास कहलाता है। भगवान श्रीकृष्ण गीता में इसकी विधि बहुत स्पष्ट रूप से बताते हैं —

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।

ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

गीता ६:२६

अर्थात् अस्थिर और चंचल मन जिस-जिस विषय के लिए बाहर जाए, उस-उस विषय से हटाकर, उसे संयत कर आत्मा में ही स्थापित करो।

अभ्यास की शर्तें—

इस प्रकार के अभ्यास से शुभ आदतें बनती हैं और आदतों का समूह ही चरित्र कहलाता हैं। ये आदतें ही गहरी होने पर संस्कारों का रूप धारण कर लेती हैं जो अचेतन स्तर से ही हमारे जीवन को सन्मार्ग में परिचालित करते हैं। चित्त वृत्ति निरोध के प्रयास से जो संस्कार बनते हैं उन्हें निरोध संस्कार कहा जाता है। ये संस्कार पुनः चित्त वृत्ति निरोध के प्रयत्न को प्रोत्साहित करते हैं।

अभ्यास में दृढ़ प्रतिष्ठ होने के लिए पतंजलि तीन शर्तें रखते हैं: दीर्घकाल, नैरन्तर्य और सत्कार। "दीर्घकाल नैरन्तर्य सत्कार सेवितो दृढ़भूमिः।।" अभ्यास के द्वारा दृढ़ीभूत होने पर उस सत्कार्य और सद्गुण विशेष में, जिसका अभ्यास किया है, प्रतिष्ठित व्यक्ति किसी भी प्रकार उससे चलायमान नहीं होता। कथित है कि बारह वर्ष तक सत्य, अहिंसा ब्रह्मचर्यादि का उपर्युक्त तीन शर्तों के साथ अनुष्ठान करने पर साधक इन यम नियमादि में पूर्णप्रतिष्ठ एवं सिद्ध हो जाता है। तब वह अनजाने भी, इनके विपरीत कार्य नहीं कर सकता, न ही भय प्रलोभन अथवा छल के द्वारा कोई उसे इनसे विचलित कर सकता है।

दीर्घ काल—चित्त वृत्ति निरोध एक दिन में नहीं होता। यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि कितना समय लगेगा। अतः इस कार्य में प्रवृत्त होने वाले साधक को पहले से ही दीर्घकाल, वर्षों ही नहीं, बल्कि जन्म जन्मान्तर तक साधना करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। मन का निग्रह तो सागर को कुशाग्र की सहायता से बूंद-बूंद करके उलीचने के समान श्रम एवं धैर्य का काम है

उद्सेक उद्धेर्यद्वत् कुशाग्रेणैक बिन्दुना।

मनसो निग्रहस्तद्वद् भवेदपरिखेदतः॥

माण्डूक्य कारिका के इस प्रसिद्ध श्लोक में "अपरिखेदतः" शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ है कि बिना खेद, शोक किए, अथवा निराश हुए कार्य किए जाना। सागर को बूंद-बूंद करके उलीचने के विषय में समुद्र तट पर निवास कर रहे एक टिटही पक्षी की रोचक कथा है, जिसके अण्डे समुद्र की लहरों से बह गये थे। क्रुद्ध होकर इस छोटे से पक्षी ने अपनी चोंच से एक-एक बूंद पानी उलीचकर समुद्र को सुखा देने की ठानी। उसके इस प्रयास में अन्य पक्षी भी सहायता करने लगे। धीरे धीरे बात पक्षिराज गरुड़ के पास गयी। वे भी आ पहुँचे और अपने पंखों के एक झटके से उन्होंने आधे सागर को सुखा दिया। दूसरी बार पंखों से सागर को साफ करने ही वाले थे कि सागर ने क्षमा मांगी, और टिटही के अंडे लौटा दिये।

एक बार देवर्षि नारद की मुलाकात दो साधकों से हुई जिनमें से एक कठोर तप में लगा था और दूसरा जीवन को सामान्य रीति से आनन्द में व्यतीत कर रहा था। दोनों ने नारद से यह जानना चाहा कि उन्हें मुक्ति में कितना समय लगेगा। पहले साधक को नारद ने कहा

कि उसे मुक्ति के लिए पांच जन्म और लगेंगे। इसके विपरीत दूसरे व्यक्ति को नारद ने एक इमली का पेड़ दिखाकर कहा कि उस वृक्ष के जितने पत्ते है उतने जन्म उसे प्रतीक्षा करनी होगी। पर उसे धैर्य था असंख्य जन्मों तक प्रतीक्षा करने का। उसी समय आकाशवाणी हुई और भगवान ने प्रसन्न होकर उसे उसी क्षण मुक्त कर दिया।

उपर्युक्त दो कथाएँ दीर्घ काल तक साधना करने की दृढ़ता, संकल्प एवं धैर्य की आवश्यकता प्रदर्शित करती है। ऐसी मन:स्थिति होना अपने आप में एक उपलब्धि है। "मुझे सिद्धि लाभ हुई है या नहीं" "मैंने कहाँ तक प्रगति की है," इत्यादि विचार अहं प्रेरित एवं साधना में बाधक होते हैं।

नैरंतर्य—नैरंतर्य का अर्थ है व्यवधान रहित साधना। चार दिन ध्यान-जप किया फिर एक दो दिन छोड़ दिया—उसके बाद चार दिन फिर किया दो दिन नहीं किया—इस तरह अभ्यास करने से सांसारिक विषयों में ही सफलता नहीं मिल सकती, चित्त वृत्ति निरोध की तो बात ही नहीं। "जब तक सफलता नहीं मिल जाती तब तक प्रयत्न करता रहूँगा," इस प्रकार की दृढ़ता, टेक, पकड़ होनी चाहिए। दो दिन एक साधना की, उसके बाद दूसरी करने लग गये, कुछ दिनों तक उसे करते रहे, सफलता नहीं मिली तो उसे छोड़कर किसी तीसरे प्रकार की साधना करने लगे—ऐसे भी सफलता नहीं मिल सकती। कुआँ खोदना हो तो एक ही स्थान पर जब तक पानी न आ जाये, खोदना पड़ता है, रेत अथवा चट्टान आदि के आने से बार-बार स्थान बदलने से काम नहीं चलने का उसी प्रकार एक ही साधना में निरन्तर लगे रहना आवश्यक है।

सत्कार—अभ्यास की दृढ़ता के लिए सत्कार सबसे महत्वपूर्ण शर्त है। क्या कारण है कि एक साधक सफल होता है, दूसरा नहीं? हम चाहते हुए भी आध्यात्मिक साधना में असफल क्यों हो जाते हैं इन महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर खोजने पर हम एक या अनेक कारण पायेंगे। सर्व प्रथम तो हमारी बुद्धि अनेकाग्र होती है—हम कई कार्य एक साथ करना चाहते हैं। हमारी अनेक इच्छाएँ, वासनाएँ—वे भले ही शुभ क्यों न हो, होती हैं। अत: हम अपनी इच्छा-शक्ति का समग्र वेग एक दिशा में नहीं लगा पाते। द्वितीयत: हममें से अनेक में स्वयं की सामर्थ्य में विश्वास का अभाव होता है—क्या मैं साधना कर पाऊँगा? कहीं ऐसा न हो कि मैं न घर का रहूँ न घाट का! माया मिली न राम! कुछ लोगों की स्वयं की कोई स्वतंत्र इच्छा या विचार नहीं होते। वे दूसरों के व्यक्तित्व एवं विचारों द्वारा अत्यधिक प्रभावित रहते हैं।

अत: निर्णय ही नहीं कर पाते कि क्या करें, क्या न करें। लक्ष्य के सम्बन्ध में स्पष्ट धारणा आवश्यक है। और उसी प्रकार साधना पथ का सही निर्धारण भी। और सत्कार एक ऐसा गुण है, जिसका सम्बन्ध इन सभी प्रश्नों से है। इस शब्द का अर्थ साधना के प्रति अत्यन्त आदर से किया जा सकता है। भाष्यकारों के अनुसार तपस्या। श्रद्धा, विद्या एवं ब्रह्मचर्य का समावेश सत्कार में है। अर्थात् साधना का अनुष्ठान तपस्या अर्थात् विषय सुख का त्याग, तत्व ज्ञान, श्रद्धा एवं ब्रह्मचर्य के साथ करने से सफलता प्राप्त होती है। विद्या का अर्थ है, भले प्रकार से, युक्ति युक्त रीति से, जैसी साधना प्रणाली है, ठीक उसी तरह समझ-सीख कर करना।

संवेग—अभ्यास की सफलता की उपर्युक्त तीन शर्तों के अतिरिक्त पतंजलि अपने योग सूत्रों में एक और घटक का उल्लेख करते हैं। वह है संवेग। जिस साधक में तीव्र संवेग होता है वह शीघ्र लक्ष्य को प्राप्त करते हैं: "तीव्र संवेगानामासन्नः।" व्यास देव के अनुसार योग के अभ्यास-वैराग्यादि साधन मृदु, मध्य अथवा तीव्र, तीन प्रकार के होते हैं। किसी में वैराग्य कम होता तो किसी में अधिक। इसी प्रकार कोई व्यक्ति अभ्यास करने में मंद, मध्यम, या उत्तम होता है। इन साधनों के अनुष्ठान में जो आग्रह अथवा शीघ्रता है, उसे ही विज्ञान-भिक्षु ने संवेग कहा है। भोजदेव के अनुसार क्रिया-

विशेष का हेतुभूत संस्कार संवेग कहलाता है। हमारे प्रत्येक कार्य के पीछे एक कारण होता है, और वह पुनः किसी संस्कार विशेष पर आधारित होता है। यह संस्कार ही भोजदेव के अनुसार संवेग है। वाचस्पत्ति मिश्र तो संवेग को वैराग्य ही कहते हैं। वस्तुतः संवेग योगशास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ केवल वैराग्य ही नहीं बल्कि वैराग्य मूलक साधन कार्य में कुशलता तथा उसमें अग्रसर होना है। "विषय से विरक्त होकर मैं शीघ्र साधन करके कृतकृत्य होऊँगा," इस तीव्रता से साधन में अग्रसर होना संवेग कहलाता है।

संवेग को समझाने के लिये अनेक दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। हिंस्र पशुसंकुल जंगल में जैसे भयाकुल पथिक तेजी से चलता है, वैसे ही संसार-अरण्य से उद्धार पाने के लिए शीघ्रता ही योगियों का संवेग है। सिर पर अग्नि रखे जाने पर जैसे व्यक्ति पानी की ओर दौड़ता है; जल में डुबाये जाने पर जैसे व्यक्ति वायु के लिए व्याकुल होता है; उसी प्रकार संसार-ज्वाला से छुटकारा पाने के लिए जब साधक साधना में प्रवृत्त होता है, तभी उसमें तीव्र संवेग है, यह समझना चाहिए। "हाय, एक दिन बीत गया और अभी तक मैंने कोई प्रगति नहीं की" —श्रीरामकृष्ण की इस प्रकार की तीव्र व्याकुलता संवेग का श्रेष्ठतम दृष्टान्त है।

श्रीरामकृष्ण के उपदेशों में भी हम तीव्रता विषयक अनेक उक्तियाँ पाते हैं। उन्हें "बनत बनत बनि जाई" का भाव पसंद नहीं था। वे चाहते थे कि साधक भगवत् दर्शन के लिए उसी प्रकार व्याकुल होकर रोये जिस प्रकार बच्चा खेल कूद से ऊब कर हाथ-पैर पटक कर माँ के पास जाने के लिए रोता है। सती का पति के प्रति प्रेम, माता का पुत्र के प्रति प्रेम एवं लोभी का धन के प्रति प्रेम—इन तीन प्रेमों को मिलाकर भगवान से प्रेम करने पर उनके दर्शन होते हैं। दुर्भाग्य तो यह है कि हम जैसे साधकों में तीन प्रकार के प्रेमों के मिश्रण की तो बात ही क्या, एक प्रकार का प्रेम भी नहीं होता। यदि तीन प्रेमों की एकाग्रता को तीव्र संवेग माना जाये तो एक को मंद और दो को मध्यम संवेग कहा जा सकता है।

इस प्रकार के तीव्र संवेग से योग का लक्ष्य आसन्न अर्थात् अत्यन्त निकट होता है। यहाँ निकटता, काल की दृष्टि से कही गयी है। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि तीन दिन व तीन रात भगवान को पुकारने पर उनके दर्शन हो सकते हैं। "रे मन, जिस प्रकार पुकारना चाहिए उस प्रकार पुकारो तो सही, कैसे माँ जगदम्बा दूर रह सकती हैं।" एक विचारक का तो कहना है कि भगवद्दर्शन पुष्प तोड़ने से भी सरल है। पुष्प तोड़ने के लिए भी हाथ बढ़ाना पड़ता हैं। लेकिन भगवद्दर्शन के लिए तो इतना भी नहीं करना पड़ता। उसके लिए तो मन को अन्तर्मुखी भर करना होता है। इसमें स्वयं के अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं होती। स्वामी ब्रह्मानन्दजी कहते थे कि जितना प्रयास विद्यार्थी एम० ए० बी० ए० आदि डिग्री पाने के लिए करता है, यदि उतना प्रयास भगवद्दर्शन के लिए करे तो वह उसमें सफल हो सकता है।

इतना सब होते हुए भी वास्तविकता तो यह है कि अधिकांश साधकों के जीवन में तीव्रता नहीं होती और वर्षों के मंद प्रयास के बाद वे जहाँ के तहाँ ही बने रहते हैं। अतः सबसे समीचीन प्रश्न तो यह है कि इस व्याकुलता को, तीव्रता को कैसे बढ़ाया जाये?

साधना में रुचि एवं आग्रह बढ़ाने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है साधुसंग। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि साधुसंग से नित्यानित्य वस्तु विवेक होता है, और भगवान को जानने की इच्छा जागती है। इसके अभाव में सत्साहित्य का पठन, विशेषकर सन्तों एवं साधकों की जीवनियाँ पढ़नी चाहिए। शंकराचार्य के अनुसार मुमुक्षा अथवा मुक्ति की इच्छा शमदमादि के अनुष्ठान से चित्त शुद्ध होने पर जनमती है। वह गुरु कृपा से भी वृद्धि पाकर फलप्रद होती है।

मन्दमध्यमरूपापि वैराग्येण शमादिना।
प्रसादेनः गुरोः सेयं प्रवृद्धा सूयते फलम्॥

और यदि भगवत्कृपा से हमारी सभी सांसारिक आसक्तियाँ समाप्त हो जाएँ तो भगवान को पाने की इच्छा तीव्रतर हो सकती है। साधक को स्वयं को शम दमादि के अभ्यास के द्वारा सदा प्रस्तुत रखना चाहिए जिससे वह भगवत्कृपा का लाभ उठा सके।

यात्रा वृत्तांत

अखण्ड आनन्द का देश : उत्तराखण्ड का दिव्य परिवेश (१)

—'मुसाफिर'

सुन्दर शुभ्र हिमाच्छादित शृंगों से परिव्याप्त गिरिराज हिमालय ! संसार के उच्चतल गगनचुम्बी शिखरों से शोभायमान सर्वोत्कृष्ट पर्वतराज हिमालय, जिसकी पावन गोद में बसे हैं उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध चार तीर्थ—गंगोतरी, यमुनोत्री, केदारनाथ तथा बदरीनाथ ! माँ गंगा तथा माँ यमुना का उद्भव स्थान हिमालय ! वैदिक संस्कृति तथा भारतीय चेतना का महान देवालय हिमालय ! ऋषि-मुनियों तथा आध्यात्मिक पिपासुओं का तपस्या स्थल हिमालय ! जिस हिमालय के महान आकर्षण ने असंख्य लोगों को बरबस अपनी ओर खींचा है, तपस्वियों को जिसकी नीरवता ने, आध्यात्मिकतावादियों को जिसकी अलौकिकता ने, पर्यटकों को जिसके सौंदर्य ने, अनुसन्धान कर्ताओं को जिसके अपार रत्न-भंडार ने और पर्वतारोहियों को जिसके गगनचुम्बी दुरूह शिखरों ने अपनी ओर खींचा है, उस हिमालय के कुछ ही दिनों में दर्शन होंगे, यह सब सोचकर मन थिरक उठा ।

हम चार व्यक्ति उत्तराखण्ड के चार तीर्थों की यात्रा प्रारंभ करने के लिए बेताब हो उठे । १४ मई १९८६ को भोर ५ बजे ही दिल्ली से हरिद्वार के लिए रवाना हो गये । दोपहर को वहाँ पहुँचकर पता चला कि चार धामों की तीर्थयात्रा के लिए तीन विकल्प हैं । पहला—गढ़वाल मंडल विकास निगम की आरामदेह विशेष बसों द्वारा चारों धामों की एकसाथ यात्रा करना । इससे अतिरिक्त लाभ यह है कि सभी स्थानों पर आवास के लिए विकास निगम द्वारा सुन्दर विश्रामागार बनाये गये हैं; अत: आवास ढूँढने की आवश्यकता किसी स्थान पर नहीं होती । किन्तु भाड़ा अधिक है; इसके लिए आरक्षण भी बहुत दिनों पूर्व करना पड़ता है । हमलोगों ने तीर्थयात्रा की योजना पहले से नहीं बनायी थी, अतः इसके द्वारा जाना हमारे लिए संभव नहीं था । दूसरा विकल्प था—गढ़वाल मोटर ओनर्स यूनियन प्रा० लि० की विशेष यात्री बसों द्वारा यात्रा करना । ये बसें सीधे तीर्थस्थान तक ले जाती हैं किन्तु प्रत्येक तीर्थ के लिए अलग से टिकट लेना पड़ता है और टिकट का आरक्षण भी अलग-अलग तीर्थस्थानों पर कराना पड़ता है । इस प्रकार जाने पर भाड़ा अपेक्षाकृत कम है, किन्तु इसमें भी दो-तीन दिनों के पहले टिकट का आरक्षण करना पड़ता है । तीसरा विकल्प था—लोकल बस द्वारा रुक-रुक कर जाना । हमलोगों का लक्ष्य अजीब सा था—कम से कम समय में, कम से कम खर्च पर अधिक से अधिक स्थानों का दर्शन करना ! उससे भी मजेदार बात—सभी स्थानों पर हम अधिक से अधिक समय व्यतीत करना चाहते थे, किन्तु लौटना आवश्यक था अतिशीघ्र ! खैर, परिस्थिति को देखते हुए हमने तीसरा विकल्प ही चुना । आरक्षण के लिए समय न गवाँकर दूसरे ही दिन प्रातः ७ बजे वाली लोकल बस से उत्तर काशी के लिए रवाना हुए । हमलोगों को जब यह सलाह दी गयी कि उत्तर प्रदेश की लोकल बसों में सीट पाने के लिए दो घण्टे पूर्व ही जाना होगा, तभी हमें सन्देह हुआ कि निर्णय लेने में शायद भूल हुई है । दूसरे दिन भोर ५ बजे ही हमलोग बस स्टैंड पहुँच गये । किन्तु

आश्चर्य ! बस में जाकर देखा—सब सीटों पर कम्बल या चद्दर रखकर लोगों ने सीटें हड़प ली हैं। खैर किसी तरह नोंक-झोंक कर बैठने का स्थान पाया। सायं लगभग ३ बजे, १७० कि० मि० यात्रा कर उत्तरकाशी पहुँचने पर पता चला कि वहाँ से यमुनोत्री के लिए बस दूसरे दिन प्रात: मिलेगी। पिछले अनुभव का लाभ उठा कर हम दूसरे दिन अर्थात १५ मई को भोर में चार बजे ही उत्तरकाशी बस स्टैंड पहुँच गये। किन्तु टिकट प्राप्त करने के लिए ६ बजे तक असफलता ही हाथ लगी क्योंकि विशेष यात्री बसें जो हनुमानचट्टी* तक सीधे जाती हैं, ऋषिकेश, हरिद्वार आदि से ही भरकर आती थीं। तब सलाह मिली कि लोकल बस द्वारा बरकोट और वहाँ से लोकल बस द्वारा ही हनुमानचट्टी तक जाया जा सकता है। किन्तु इसमें भी समस्या आ खड़ी हुई। टिकट बुकिंग वाले कहने लगे, लोकल बस में लोकल लोगों को ही प्राथमिकता दी जायगी, टिकट बचने पर ही तीर्थयात्रियों को दी जायेगी। एक के बाद एक, कई बसें चली गयीं किन्तु हम खड़े ही देखते रह गये। अन्त में बरकोट की लोकल बस की टिकट तो किसी प्रकार हथिया ली; किन्तु बस में जाकर देखा—सीटें पहले ही हथिया ली गयी हैं! अब बैठने के लिए फिर झंझट ! उत्तरप्रदेश की लोकल बस द्वारा यात्रा करने में क्या मजा है, अब पता चल गया। सोचा, इससे तो अच्छा होता यदि गढ़वाल मोटर ऑनर्स युनियन की विशेष यात्री बस से आते। खैर, अब पछताये होत क्या जब चिड़िया चुग गयी खेत !

मार्ग अति कठिन था। पहाड़ों तथा जंगलों से घुमावदार रास्तों से होते हुए बस जा रही थी। एक घाटी के बड़े मोड़ के अन्त पर श्वेत हिमाच्छादित शिखरों पर पहली बार जब दृष्टिपात हुआ तो हमारे आनंद की सीमा न रही। आसपास के मनोरम प्राकृतिक सौंदर्य तथा इस अपूर्व दृश्य ने हमारी सारी थकान दूर कर दी। मार्ग में, बीच-बीच में, चट्टियों तथा छोटे कस्बों के पास चाय-पान आदि के लिए रुकते हुए बस जा रही थी। कुछ स्थानों पर मजेदार साईन-बोर्ड भी देखने को मिले। एक छोटे कस्बे में रास्ते के किनारे एक कच्चा मकान था, उसकी छत पर खुली जगह में एक दर्जी सिलाई कर रहा था। नीचे साईन बोर्ड लगायी थी—'न्युयार्क टेलर्स'! एक और स्थान पर एक छोटे से, टूटे-फूटे मकान पर बोर्ड लटकी थी—'ग्रेन्ड हॉटल'! एक और कच्चे मकान पर बड़ी साईन बोर्ड में लिखा था—'I Treat He Cures Clinic'!

८५ कि० मि० यात्रा कर लगभग ११ बजे हम बरकोट पहुँचे। होटल में दोपहर का भोजन निपटाने पर, देखा—हनुमानचट्टी के लिए बस आ रही है। अब हमलोग उत्तर प्रदेश की लोकल बसों में चढ़ने के लिए पर्याप्त बुद्धिमान हो गये थे। हममें से दो व्यक्ति टिकट खरीदने चले गये और अन्य दो, बस की ओर सीटों पर कब्जा करने के लिए दौड़ पड़े ! किसी प्रकार पीछे को सीटें मिलीं। धक्के खाकर तथा उत्तर प्रदेश की बससेवा का गुणगान करते-करते ३४ कि० मि० यात्रा कर सायं ३ बजे हमलोग हनुमान चट्टी पहुँचे।

वहाँ पहुँचते ही बारिश होने लगी। आधे घन्टे तक अपेक्षा करने के बाद जैसे ही बारिस कम हुई, हमलोग पैदल यमुनोत्री के लिए रवाना हुए जो वहाँ से १३ कि० मि० की दूरी पर है। सुन रखा था, चारों तीर्थों में यमुनोत्री की चढ़ाई ही सर्वाधिक कठिन है। २-३ कि०मि० चलते ही इस बात का अहसास हो गया। शाम में सभी के पास अपना-अपना सामान्य सामान था—कुछ वस्त्र, कम्बल तथा लाठी इत्यादि। किन्तु इसे ढोना अब असाध्य होने लगा। अन्य यात्रियों में से जो पैदल जा रहे थे, उन्होंने कुली कर लिया था, कुछ लोग टट्टू पर, दण्डी पर या कंडी पर जा रहे थे। हम इस बात पर पछता रहे थे कि हमने कुली क्यों नहीं लिया, उसी समय भगवान की कृपा से एक कुली ऊपर से नीचे आता हुआ दिखायी

---

*यह स्थान यमुनोत्री से लगभग १३ कि० मि० दूर है। यहाँ से आगे बस मार्ग नहीं है, पैदल ही ऊपर चढ़ना होता है।

दिया। उसने सहर्ष हमारा सामान ढोना स्वीकार किया। अब अपेक्षाकृत अधिक सुगमता से हम चलने लगे। लगभग ६ कि० मि० की दूरी तय कर जानकीचट्टी पहुँचते ही जोरों से बारिश होने लगी। शाम के ६ बज गये थे। अतः वहीं पर एक चट्टी में एक कमरा किराये पर ले लिया। हाथ-मुँह धोकर, चाय-नाश्ता कर हमलोगों ने मिट्टी के मकान के इस कमरे में प्रवेश किया, उसे साफ सुथरा कर, जमीन पर अपने कम्बलों को बिछाकर एक कोने में श्रीरामकृष्णदेव, माँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द के चित्रों को सजाया तथा अगरबत्ती जलाकर सांध्य आरती की प्रार्थना "खण्डन भव बन्धन" गाकर आनंद प्राप्त किया। ध्यान-जपादि के बाद पहाड़ी भोजन बड़ा ही स्वादिष्ट लगा, क्योंकि पैदल यात्रा ने हम सभी की क्षुधा को बढ़ा दिया था।

दूसरे दिन, १७ मई को भोर ४॥ बजे ही हम श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा तथा स्वामीजी का नाम लेकर यमुनोत्री के लिए रवाना हो गये। साथ में एक-एक छोटी बैग थी। बाकी सामान चट्टी पर ही रख दिया था। कुछ देर बाद अत्यन्त दुर्गम तथा सीधी चढ़ाई मिली। किन्तु आसपास के विलक्षण प्राकृतिक सौंदर्य ने थकान को महसूस करने नहीं दिया। २ कि० मि० चलने के बाद एक अपूर्व दृश्य को देखकर स्तंभित हो हम खड़े रह गये। गिरिराज के हिमशिखरों पर स्वर्णमय मुकुट था। बाद में पता चला, पूर्व दिशा में सूर्योदय हो रहा था उसकी प्रतिच्छाया हमारे सम्मुख अवस्थित इन श्वेत हिमशिखरों पर पड़ने से यह आभास हुआ। आसपास के नीरव, स्वच्छ शांत वातावरण, प्राकृतिक सौंदर्य तथा पर्वतराज के इस अवर्णनीय दृश्य ने हमारे मन को अभिभूत कर दिया। आगे चलने की इच्छा नहीं हो रही थी। वहीं चट्टान पर कुछ समय के लिए चुपचाप बैठ गये। श्रीरामकृष्ण के पार्षद् स्वामी अखण्डानन्दजी महाराज ने अपनी यात्रा के संस्मरणों में हिमालय के जादू-से प्रभाव का जो वर्णन किया है यह सब स्मरण हो आया—देवाधिदेव महादेव यहाँ नित्य तपस्या में लीन रहते हैं, हर-गौरी का नित्य मिलन होता है, इत्यादि। लगा कि ये सब बातें यदि कल्पना हों, तो भी इस कल्पना के उद्भव का कारण निःसम्बल नहीं है। ऋषि-मुनियों ने यदि तपस्या के लिए इस स्थान को चुना हो तो उसमें आश्चर्य ही क्या ?

उठने की इच्छा नहीं हो रही थी। शीघ्र लौटना था, अतः अनिच्छापूर्वक वहाँ से फिर चलना शुरू किया। जाने के पहले इस अपूर्व दृश्य को कैमरे में बन्द कर दिया। रास्ते में ऊपर से नीचे आते हुए यात्रियों से मुलाकात होते ही वे आनन्दपूर्वक 'जय सीते' अथवा 'सीताराम' कहकर अभिवादन करते थे। इस प्रकार प्राकृतिक सौंदर्य का आनन्द लेते-लेते हमलोग प्रातः ६ बजे यमुनोत्री पहुँच गये। अब हमलोग समुद्री सतह से १०,८०० फीट की ऊँचाई पर थे। सामने ही देखा—यमुना नदी एक पतली जलधारा के रूप में किन्तु बहुत तीव्र गति से बह रही है। जल इतना स्वच्छ था कि काँच के समान पारदर्शक दीख रहा था। अचरज की बात है कि यमुना की धारा यहाँ उत्तरवाहिनी है। इसीलिए शायद इस स्थान का नाम यमनोत्तरी पड़ा है। अहो, क्या ही रमणीय स्थान है ! सचमुच, यहाँ का प्राकृतिक सौंदर्य वर्णनातीत है। इसका आभास प्रत्यक्षदर्शी को ही हो सकता है। फ्रेजर ने अपनी पुस्तक "जरनल ऑफ ए टुर इन गढ़वाल हिमालय" में इसका विस्तृत वर्णन किया है। कूर्म पुराण में भी यमनोत्तरी की महिमा विस्तार से बखानी गयी है।

यमनोत्री के मंदिर में प्रवेश करने के पहले हमलोगों ने तप्त कुण्ड में स्नान करने की अपनी दीर्घकालीन इच्छा को पूर्ण करने का विचार किया, क्योंकि कड़कड़ाती ठंड से दो दिनों से सभी का हाल बुरा था। यहाँ का तप्त कुंड प्रसिद्ध है। इसका तापमान १९४-९०° फा. तक रहता है। भोजन के लिए चूल्हा जलाने की आवश्यकता नहीं रहती, चावल, आलू आदि कपड़े में बाँधकर इसमें डुबो कर लोग १५ मिनट में इसे पका लेते हैं। इसी को यमुनोत्री का प्रसाद मानकर लोग घर भी ले जाते हैं। हमलोगों ने भी कुछ चावल खरीदकर १५-२० मिनट उसे

जल में डूबोकर, पकाकर उसे प्रसाद बना लिया।

इस तप्त कुंड के नीचे से जल बहकर एक और कुंड में जाता है। ऊपर वाले कुंड में स्नान करना असंभव है इसलिए लोग इस नीचेवाले कुंड में ही स्नान करते हैं। हमलोग ठंड से ठिठुरते हुए कुंड तक तो बड़े उत्साह से गये किन्तु पैर रखते ही जल इतना गरम लगा कि नीचे उतरने का साहस नहीं हुआ। जो लोग कुंड में स्नान कर रहे थे उन्होंने कहा कि पूरे शरीर को एक झटके में डुबो देने से पानी तथा शरीर का तापक्रम एक हो जायगा। अन्त में साहस बटोरकर हमने डुबकी लगायी, कुछ ही क्षणों में इतना सुखद उष्ण अनुभव हुआ कि अब बाहर निकलने की इच्छा नहीं हो रही थी। कुछ देर तक इस सुख का उपभोग कर माँ यमुना तथा माँ गंगा के मंदिर का दर्शन कर एक चट्टी में जाकर चाय-नाश्ता किया। लगभग ९ बजे वहाँ से वापस रवाना हुए।

लगभग डेढ़ घंटे में ६ कि०मि० उतर कर हमलोग जानकी चट्टी पहुँचे। शीघ्र दोपहर का भोजन निपटाकर हनुमानचट्टी के लिए रवाना हुए। उत्साह के अतिरेक में तीव्र वेग से नीचे उतरने लगे, चूँकि पहाड़ों पर चढ़ने-उतरने का अनुभव नहीं था। दोपहर १ बजे के पहले ही हनुमान चट्टी पहुँच गये। किन्तु २-३ जगह फिसलकर गिरतेगिरते बचे। ऊपर चढ़ते समय साँस फूल जाती है अत: गति अपने आप अवरोधित हो जाती है, किन्तु नीचे उतरते समय विशेष सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है, यह हमने बाद में सीखा। यदि इस तीर्थयात्रा के लिए विशेष रूप से खरीदे हुए कैनवास के जूते न पहने होते तो फिसलकर गिरने से बचना मुश्किल था। उतरते समय थकान तो महसूस नहीं हुई किन्तु बाद में पैर की पिण्डलियों के दर्द ने हमें पाठ सिखा दिया कि अब से हमें पहाड़ पर सावधानी से, धीरे धीरे उतरना चाहिए।

हनुमानचट्टी में बस-स्टैंड पर पता चला कि गंगोत्री के लिए विशेष यात्री बसें यहाँ से उपलब्ध हैं। यह सुविधा हमें इसलिए मिली, क्योंकि हमने अपनी यात्रा यमुनोत्री से प्रारंभ की थी। भौगोलिक दृष्टि से यमनोत्री, गंगोत्री, केदारनाथ तथा बदरीनाथ एक के बाद एक, बाये से दायें हिमालय के विभिन्न शिखरों पर अवस्थित हैं। धार्मिक दृष्टि से भी बायें से दायें प्रदक्षिणा करने की विधि है। विशेष यात्री बसें भी यमनोत्री से गंगोत्री के लिए, गंगोत्री से गौरीकुण्ड के लिए (केदारनाथ के निकटतम बसस्टैंन्ड) तथा गौरी-कुण्ड से बदरीनाथ के लिए उपलब्ध रहती है। लोकल बसों का अनुभव पर्याप्त हो चुका था अत: विशेष यात्री बस से ही जाना निश्चित हुआ। सामने ही गंगोत्री के लिए एक बस खड़ी थी, किन्तु पता चला सब टिकटें बिक चुकी हैं। किन्तु भगवान की कृपा से कन्डक्टर ने हमलोगों को बैठा लिया, क्योंकि ६ व्यक्तियों का दल टिकट खरीदने के बाद भी नहीं पहुँचा। सभी यात्रियों ने 'जमुने महारानी की जय' 'गंगे महारानी की जय' कहकर जय-जयकार किया और बस चल पड़ी। रास्ते में जब भी यमुना नदी या गंगा नदी के पुल पर से बस गुजरती, तभी यह जय-जयकार होता था।

ये बसें (गढवाल मोटर ऑनर्स युनियन प्रा०लि० की) अपेक्षाकृत आरामदायक थी, ४३ सीटों पर ४३ लोगों को ही लिया जाता है। सभी तीर्थयात्री ही थे, अत: श्रद्धापूर्वक भक्तिसूत्र में बँधे हुए-से जा रहे थे। कुछ भक्तिमती महिलाएँ कीर्तन कर रही थीं। इस प्रकार भगवान का भजन करते-करते रास्ते में मनोरम प्राकृतिक सौंदर्य का उपभोग करते-करते ११५ कि० मि० यात्रा कर सायं ६ बजे उत्तरकाशी पहुँचे। इन स्थानों पर पहाड़ी मार्ग अत्यन्त दुष्कर होने के कारण, बसें रात में नहीं चलती हैं। सुविधाजनक स्थान पर रात के लिए टिक जाती हैं। ड्राइवर ने सभी को बता दिया—दूसरे दिन भोर ४ बजे बस उत्तरकाशी से रवाना हो जायगी, यदि कोई देर से

जायगा और छूट जायगा तो इसके जिम्मेवार बसवाले नहीं होंगे।

दूसरे दिन प्रातः ठीक ४ बजे हम सब बस-स्टैंड पहुँच गये। जाकर देखा अनेक बसें रुकी हुई हैं, किन्तु हमारी बस का पता नहीं। हमलोग घबड़ाकर सोचने लगे—कहीं हमारी घड़ी में कुछ गड़बड़ी तो नहीं है? तो क्या बस छूट गयी? हमारी टिकट के पैसे भी गये? अब तो टिकट मिलने में भी उस दिन के समान झंझट होगी।" यही सब सोच रहे थे कि हममें से एक ने एक बस का नम्बर अपनी डायरी में लिखे नम्बर से मिला लिया। देखा—बस में अंधकार है, ड्राइवर तथा कन्डक्टर भीतर सो रहे हैं। यात्रियों में से किसी का भी पता नहीं! बस को बहुत ठोकने पर कन्डक्टर आँखें मलता हुआ बाहर निकला और झल्लाकर बोला—देखते नहीं, ड्राइवर सो रहा है, इतना शोरगुल करने से नींद खराब होगी।" हमलोगों ने जब पिछली रात की बात का स्मरण कर घड़ी दिखलायी तो दरवाजा बन्द करते हुए बोला—"सब यात्रियों को आने दीजिये।" किन्तु बाकी सब यात्री हमसे समझदार थे! उन लोगों ने ५ बजे के बाद आना शुरू किया। चाय-पान इत्यादि के बाद ५॥ बजे ड्राइवर ने बस चलायी। अब हमलोगों ने इस इलाके की घड़ी का भी अनुभव कर लिया, लोकल बस का अनुभव तो पहले ही हो गया था।

(अगले अंक में समाप्य)

●

रामकृष्ण-विवेकानन्द भावान्दोलन का राष्ट्र निर्माण में योगदान

—डॉ० शैल पाण्डेय
हिन्दी विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय

श्रीरामकृष्णदेव के जीवन से संचित अपूर्व अनुभूतियों एवं अभिज्ञताओं के परिप्रेक्ष्य में मानव-कल्याण के प्रयत्न का नाम रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-आन्दोलन है। पृथ्वी पर मानव जीवन के पुनर्निर्माण के लिए प्रवर्तित इस आन्दोलन का प्रतिनिधित्व रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण-मिशन करते है। इस प्रकार रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन की निर्माणकारी केन्द्रीय-शक्ति को ही रामकृष्ण भाव आन्दोलन कहा जा सकता है।

यह आन्दोलन श्रीरामकृष्णदेव के जीवन और कार्य के निःसृत उपायों के माध्यम से सब के कल्याण की, सम्पूर्ण मानव-जाति के आध्यात्मीकरण की वांछा करता है। यह ईश्वर का "बाधाहीन पथ" पर मानव-जीवन के पुनर्निर्माण का आंदोलन है। अनेक दिशाओं में प्रवाहित होने वाला यह आंदोलन मानव-उन्नति के विभिन्न स्तरों पर कार्यरत है। संपूर्ण मानव-जाति के विकास के मूल अभिप्राय को इस आंदोलन में अभिव्यक्ति मिली है, जो वस्तुतः संसार के सभी लोगों के पुनर्जीवन के लिए वचन-बद्ध है। यह ध्यान रखना होगा कि रामकृष्ण विवेकानन्द आंदोलन रामकृष्णदेव के किसी विशेष कथन से अस्तित्व में नहीं आया। वरन् यह उनके संपूर्ण जीवन और उपदेश से, प्रेम और आशीर्वाद से विकसित हुआ।

इस भावधारा में जगत को कुछ ऐसी समस्याओं के, जिन्होंने विश्व के चिन्तकों एवं क्रान्तिकारियों को किंकर्तव्यविमूढ़ कर रखा है, वैचारिक समाधान प्राप्त होते हैं।

जगत की सारी विचारधाराओं का परीक्षण करने पर
सभी में कुछ न कुछ कमियाँ दृष्टिगोचर होती हैं, क्योंकि
किसी ने भी मानव को उसकी समग्रता में, उसके सभी
पहलुओं के साथ लेने की परवाह नहीं की। मानव के
आधे व्यक्तित्व के लिए, उसके उदर एवं अन्य वस्तुओं के
लिए अद्भुत-अद्भुत दर्शन रचे गये हैं। परन्तु इससे
ऊपर के स्तर पर कोई नहीं गया है। इसकी ओर
विवेकानन्द का दर्शन है, जो सहज स्पष्ट और निर्भीक है।
चूँकि पूर्ण अस्तित्व ईश्वर का स्वभाव है और अस्तित्व
एक ही है। अत: मूल रूप से जीव और परमात्मा अभिन्न
हैं। जब भी यह पूर्ण अभिन्नता भुला दी जाती है अथवा
नजर अंदाज कर दी जाती है, तभी अस्तित्व की सम-
स्याओं का उद्भव और उपचय होता है। जीवात्मा और
परमात्मा की इस पूर्ण अभिन्नता को, जीवन के हर संदर्भ
में उपयोगिता का पता लगा कर संसार की सारी सम-
स्याओं के समाधान का प्रयास यह आंदोलन करता है।
अत: यह आंदोलन वर्तमान काल की सभी समस्याओं
तथा चुनौती भरे प्रश्नों का अत्यन्त साहसपूण समाधान
देता है। यदि मिट्टी की मूर्ति में ईश्वर की पूजा हो सकती
है, तो फिर मानव के भीतर क्यों नहीं हो सकती? यह
भावधारा उत्कृष्ट वेदान्त-दर्शन के स्फूर्तिदायी संदेश को
इस ढंग से प्रस्तुत करती है कि आधुनिक मानव को वह
सहज ही बोधगम्य हो जाता है।

आज भारत संकट-काल से गुजर रहा है। आदर्श
एवं नैतिकता की दृष्टि से राष्ट्रीय-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र
में हम दुरव्यवस्था पाते हैं। किसी ईमानदार और सच्चे
व्यक्ति के लिए ऐसे वातावरण में रहना बहुत कठिन हो
गया है। यह परिस्थिति आज केवल भारत ही नहीं, वल्कि
सारे संसार में है। यह वस्तुत: धर्म की उपेक्षा एवं
भौतिकवाद के अनुसरण का परिणाम है, जो पश्चिमी
देशवासियों के जीवन का लक्ष्य बन गया और वहाँ से
भारत सहित समस्त विश्व में प्रसारित हो गया। वर्तमान
युग की इस सड़न से रक्षा के लिए आध्यात्मिकता सम्पन्न
एक नये व्यक्तित्व और संदेश की आवश्यकता थी।
गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं कि जब अधर्म बढ़ता है, तब
वे जन्म लेते हैं—वास्तविक धर्म की शिक्षा देने तथा
सज्जनों की रक्षा के लिए। इस युग में परिस्थितियाँ ऐसी
थीं कि श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द जैसी दो
महान आध्यात्मिक विभूतियों को आना पड़ा। एक ने
कठोर साधनाओं के द्वारा सत्य का आविष्कार किया और
दूसरे ने संसार भर में उसे फैला दिया। अपने जीवन को
प्रयोगशाला बनाकर श्रीरामकृष्ण ने जिन सत्यों की
अनुभूति की उनसे मानव-जीवन के नव-निर्माण का
गुरुदायित्व उन्होंने अपने शिष्य स्वामी विवेकानन्द पर
न्यस्त किया।

श्रीरामकृष्णदेव आधुनिक युग में ईश्वर के अवतार
थे। त्याग ही उनका वैशिष्ट्य था। उन्होंने यद्यपि कोई
औपचारिक शिक्षा नहीं प्राप्त की थी, फिर भी वे इस
युग के बुद्धिजीवियों को मथित करने वाली हर आध्या-
त्मिक समस्या का पूर्णत: संतोषजनक समाधान प्रस्तुत कर
सकते थे। श्रीरामकृष्ण के अर्थब-गर्भ और दीप्त शब्दों के
पीछे एक संत के जीवन के उस सर्वोत्तम अंश का आधार
था, जो नैतिक अनुशासन, कठोर और अविराम सत्या-
न्वेषण तथा अध्यात्म की गगन-चुंबी ऊँचाइयों पर विजय
पाने में बीता था। श्रीरामकृष्ण के शब्द जीवन्त थे,
क्योंकि उन्हें वास्तव में जिया गया था। जब तक जीवन
कथन के अनुरूप नहीं होता, कोई भी व्यक्ति संत की
मान्यता को नहीं प्राप्त कर सकता। उनके जीवन को
लक्ष्य कर फ्रांसीसी मनीषी रोमाँ रोलाँ कहते है—"श्री
रामकृष्ण तीस कोटि भारतीयों के उस आध्यात्मिक जीवन
के पूर्ण प्रकाश स्वरूप थे, जिसकी अंखड पावनधारा
विगत दो सहस्त्र वर्षों से सतत प्रवाहित होती आ रही
है। उनके जीवन-संगीत से मानव-जाति के सहस्रों धर्म-
पथों एवं उपपथों के विभिन्न परस्पर विरोधी दिखाने
वाले स्वरों में समरसता लाने वाली मंजुल ध्वनि निकली
है।" वास्तव में आध्यात्मिकता और उदार सार्वजनीनता
का एकत्र समावेश श्रीरामकृष्ण के जीवन में जिस सुन्दर
रूप में हुआ है, वह अन्यत्र दृष्टिगत नहीं होता। महात्मा
गाँधी ने भी उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए कहा है—

श्रीरामकृष्णदेव का जीवन-चरित्र धर्म की साक्षात् उपलब्धि का उत्कृष्ट इतिहास है। श्रीरामकृष्ण ईश्वरत्व की सजीव मूर्ति थे।"

भोग और आसक्ति प्रधान इस युग में जब ईश्वर का अस्तित्व ही संदिग्ध हो उठा था, उस पर से लोगों की आस्था घटती जा रही थी, उन्होंने उद्घोष किया कि ईश्वर है और ईश्वर दर्शन ही मानव-जीवन का एकमात्र लक्ष्य है। श्रीरामकृष्ण ने स्वयं सभी पथों—साकार, निराकार, शैव, शाक्त, वैष्णव, तंत्र आदि हिन्दुओं की विभिन्न धार्मिक पद्वतियों की साधना कर ईश्वरानुभूति की। यहाँ तक कि ईसाई और इस्लाम धर्मों की भी साधना कर सत्य का प्रत्यक्षीकरण किया। इस प्रकार धर्म को विज्ञान के निकट लाते हुए उन्होंने एक सच्चे वैज्ञानिक की भांति विभिन्न धर्म-पथों की सत्यता का प्रायोगिक पद्धति से परीक्षण किया। इन सब अनुभवों ने श्रीरामकृष्ण में समस्त धर्मों के समन्वय की अनुभूति को जन्म दिया, जिसे उन्होंने बाद में "जितने मत उतने पथ" कह कर घोषित किया। यह उस वैदिक घोषणा का ही रूपान्तर था, जिसमें कहा गया है—"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति"—सत्य एक है ज्ञानीजन उसे विभिन्न नामों से पुकारते हैं। यह ऋषियों की वह वाणी है, जिसने भारतीय सभ्यता को आधार प्रदान किया और उसकी धारा को हर मोड़ पर दिशा दी।

इस प्रकार संदेहवादी वैज्ञानिक जगत के लिए, जो तर्क और प्रत्यक्ष प्रमाण पर निर्भर करता है, उन्होंने अपनी उपर्युक्त अनुभूति द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित कर दिया, जिसे वैज्ञानिक जगत ने किसी प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में नकार दिया था। उन्होंने न केवल ईश्वर के अस्तित्व को ही प्रमाणित किया, बल्कि यह भी सिद्ध कर दिया कि सारे धर्म सत्य हैं तथा प्रत्यक्ष अनुभूति के मार्ग से ईश्वर-साक्षात्कार को ले जाते हैं। उनके इस संदेश का, विशेषकर भारत के संदर्भ में, एक बड़ा महत्व है, जहाँ बहुत से धर्म हैं, जो आपस में लड़ते-झगड़ते और खून-खराबा करते रहते हैं। केवल यह संदेश ही विभिन्न धर्मों के अनुयायिओं को एक महान राष्ट्र के रूप में संगठित कर सकता है।

त्याग के तीव्र भाव, जिसने श्रीरामकृष्ण की दृष्टि में सोने और मिट्टी को समान बना दिया था, के द्वारा उन्होंने धन के पीछे भागने वाले वर्तमान समाज को यह दिखाया कि सभी प्रकार का धन-संचय एवं दूसरे की संपत्ति को हड़पना "अहंकारों का अहंकार है। उन्होंने हम, सामाजिक रूप से सैकड़ों दलों में विभक्त, परस्पर लड़ने भिड़नेवाले और बहुधा रक्तपात करने वाले लोगों को यह भी बताया कि इन सतही विभिन्नताओं के पीछे वही एक आत्मा है, और इस सत्य की अज्ञानता ही इन सब झगड़ों को सृष्टि करती है। उन्होंने उपदेश दिया कि जीव शिव ही है, और केवल इतना ही नहीं, बल्कि यह भी कि जो यह दृष्टिकोण लेकर जीव की सेवा करता है, वह ईश्वर साक्षात्कार करने में समर्थ होता है। आज उनके इस संदेश का हमारे लिए बड़ा महत्व है। वह लौकिक और अलौकिक का, कर्म और उपासना का सारा अन्तर समाप्त कर देता है। वह इसमें हमारी सहायता करता है कि हम अपने राष्ट्रीय आदर्श ईश्वर लाभ से भी जुड़े रहें तथा साथ ही राष्ट्र के पुनर्निर्माण में जो भी कार्य आवश्यक हों, वह करें। अन्यथा कर्म साधारणतया हमें बहिर्मुखी बना देता है और ईश्वर-साक्षात्कार में बाधक होता है।

यदि हम वर्तमान परिस्थितियों एवं श्रीरामकृष्ण द्वारा छोड़े गए संदेश का विश्लेषण करें तो पाएंगे कि वे ही इस युग के पुरुष हैं जिनके लिए सारा संसार लम्बे समय से प्रतीक्षा करता रहा है। विशेषकर भारत के लिए उनका संदेश अनिवार्य है, यदि हम राष्ट्र और समाज का पुनर्निर्माण करना चाहते हैं तथा एक महान राष्ट्र के रूप में पुनः सामने आना चाहते हैं। इतिहास साक्षी है कि प्रत्येक विशाल सभ्यता के मूल में महान एवं महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक पुरुष थे जिनके जीवन तथा संदेश ने एक नयी सभ्यता का आरम्भ करने की आवश्यक प्रेरणा दी और इस प्रकार एक नयी व्यवस्था, एक नये

समाज के निर्माण की प्रेरणा दी। यह ईसाई-सभ्यता, मुस्लिम-सभ्यता, बौद्ध-सभ्यता और हिन्दू सभ्यता के साथ भी लागू होता है। श्रीरामकृष्ण के आध्यात्मिक सन्देशों में एक नयी सभ्यता के उद्घाटन की अन्तःशक्ति है, जिसके संकेत हम आज विश्व के विभिन्न भागों में चारों ओर देख रहे हैं।

वे किसी का खंडन करते प्रतीत नहीं होते, बल्कि लोगों को केवल स्मरण दिलाते हैं कि वास्तविक लक्ष्य, वे जहाँ हैं उससे और आगे है और उन्हें सदा आगे बढ़ते जाना चाहिए। दूसरी जगह भले ही धर्ममात्र खण्डन-मण्डन हो लेकिन उनके साथ धर्म "जीता जागता" 'अस्तित्व और संभावना' था। इसीलिए सभी सम्प्रदायों के लोग उनके पास प्रेरणा और पथ-प्रदर्शन के लिए इकट्ठे हो गये थे। हिन्दू सोचते थे कि अब तक धरती पर विचरण करने वालों में वे सर्वोत्तम हिन्दू हैं। अधिक विस्मय की बात यह है कि मुसलमान, ईसाई तथा अन्य धार्मिक समूहों के सदस्यों ने भी सोचा कि वे उनमें से ही एक हैं—ऐसे एक, जो उनके सर्वोत्तम आदर्श का प्रतिनिधित्व करते है। इस संबंध में वस्तुतः श्रीरामकृष्ण एक विलक्षण व्यक्ति थे। जैसा कि श्री अरविन्द ने कहा है, "श्रीरामकृष्ण अकेले अपने में सबके संश्लेषण का प्रतिनिधित्व करते हैं।" इस प्रकार श्रीरामकृष्ण अपने ही जीवन काल में एक नये भाव-आंदोलन के, जिसने धर्म में परस्पर विरोधी विचारों का संश्लेषण किया था, केन्द्र-बिन्दु हो गये तथा उन्होंने विभिन्न धार्मिक परम्पराओं को पुनर्जीवित भी किया।

यद्यपि श्रीरामकृष्ण ने राजनीति, अर्थशास्त्र एवं सामाजिक विज्ञान में रुचि नहीं ली, फिर भी उनके कुछ कार्य तथा उक्तियाँ आधुनिक मानव के लिए काफी अर्थपूर्ण हैं, क्योंकि वे सर्वांगीण मानवीय-विकास के लिए पथ-निर्देश करते हैं। वस्तुतः ऐसे सारे कर्म आध्यात्म के आधार पर होने चाहिए और श्रीरामकृष्ण द्वारा दिया गया यह अध्यात्म यथार्थ मानवीय-विकास के किसी भी क्षत्र में बाधक नहीं है। आधुनिक विज्ञान के भौतिकवादी विचारों ने मानवता को आध्यात्मिकता से वंचित कर दिया है। श्रीरामकृष्ण इन महान भूलों का समाधान देते हैं।

श्रीरामकृष्ण को ऐसे लोगों की खोज थी, जो उनके संदेशों को समझ कर उनके अनुसार आचरण करने का प्रयास करते। अपने पास आये विशाल जनसमूह में से उन्होंने एक दर्जन लोगों को चुना था, जिनमें नरेन, जो बाद में प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्द हुए, शीर्षस्थ थे। यह देख कर बड़ा अद्भुत लगता है कि उन्हें यह पूर्वाभास था कि किसी दिन उन भावों का विश्व की धार्मिक विचार-धारा पर एक महान प्रभाव पड़ेगा। उनके वचनामृत में उनकी वार्ताएँ जिस प्रकार लिपिबद्ध की गयी हैं, उनमें ऐसी संभावना के बारे में संकेत बिखरे पड़े हैं।

वह दिन जब अपने शिष्य नरेन के समाधि का आनन्द पाने के हठ पर गुरु श्रीरामकृष्ण ने फटकार लगायी थी—"इतनी तुच्छ वस्तु की याचना! संसार दुःख, शोक और पाप से जर्जर हो रहा है और तू समाधि-सुख में डूबा रहना चाहता है! कहाँ मैंने सोचा था कि तू एक महान बट-वृक्ष के समान होगा, जिसकी छाया में हजारों लाखों जीव विश्राम पाएँगे। इतने छोटे दिल का न हो, समाधि से भी ऊँची एक अवस्था है।" और फिर वह दिन भी, जब श्रीरामकृष्ण देव ने अपने इस योग्यतम शिष्य को अपने संपूर्ण जीवन की साधनाओं का फल प्रदान करके समस्त संसार में धर्मरत्न बाँटने का एक साधन बना लिया, ईश्वर को सभी जीवों में देख कर "बहुजन हिताय बहुजन सुखाय" जीवन उत्सर्ग करने को, समग्र जगत के कल्याण और सुख के लिए अपना सर्वस्व विसर्जित करने की शिक्षा प्रदान की वह मानव इतिहास का स्वर्णिम दिन, रामकृष्ण-भाव-आंदोलन की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। श्रीरामकृष्ण ने विवेकानन्द को जो कार्य दिया, उन्हें जो दायित्व सौंपा—वही रामकृष्ण विवेकानन्द-भाव-आंदोलन की नींव है।

श्रीरामकृष्ण से शक्ति, दिशा और आदेश पाकर नरेन—स्वामी विवेकानन्द बन गये, मसीहा बन गये।

उन्होंने सर्वदा एक मसीहा के समान चिन्तन और कार्य किया। सार्वभौमिक दृष्टिकोण अपनाते हुए उन्होंने इस प्रकार अपना संदेश दिया, जो प्रत्येक मनुष्य का दैहिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक सभी स्तरों पर कल्याण साधन करे। उस युवा संन्यासी विवेकानन्द के रूप में परिणत नरेन ने ही अपने गुरुदेव की महासमाधि के कुछ काल पश्चात जगत का सब प्रकार से कल्याण करने के उदेश्य से अपने देशवासियों के लिए एक नये आन्दोलन का सूत्रपात किया और विश्व को रामकृष्ण-मठ और रामकृष्ण-मिशन के रूप में एक अनुपम संगठन प्रदान किया तथा इस संघ को विश्वव्यापी उत्तरदायित्व सौंपे।

इस आन्दोलन के संवर्द्धन में श्रीमाँ सारदादेवी का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा। वे इस आंदोलन की मूलभूत शक्ति हैं। वे श्रीरामकृष्ण की प्रथम शिष्या थीं। यही नहीं, वे जगदम्बा के रूप में श्रीरामकृष्ण द्वारा की गयी अंतिम पूजा की भी ग्रहीता थीं। वे विद्यारूपिणी और ज्ञानदायिनी थीं। श्रीरामकृष्ण ने उनके चरणो में अपनी सारी साधनाओं का फल, स्वयं को तथा अपनी जपमाला को भी समर्पित कर दिया था। उन्होने उन्हें अपनी शक्ति कहकर घोषणा की थी, फलस्वरूप वे उनसे अभिन्न थीं। वे इस आंदोलन के विकास में धीरे-धीरे एक अनुपम पद पर प्रतिष्ठित हुईं। उन्हीं का सार्थक आशीर्वाद लेकर स्वामीजी अमेरिका गये थे। यह उनकी अतीव दूरदर्शिता तथा अदृश्य व्यवस्था शक्ति ही थी, जो संन्यास की सीमा से परे रह कर भी इस आदोलन को विकसित तथा उसकी दिव्य धुरी पर परिचालित करती रहती थी। उन्होंने अपनी आकुल प्रार्थना के द्वारा रामकृष्ण संघ का भविष्य सुनिश्चित किया। श्रीरामकृष्ण से प्रार्थना करके उन्होंने इस संघ को एक नवीन दिशा भी दी। उन्होंने प्राचीन संन्यास आश्रम को लोक-संग्रह के संदर्भ में एक नयी दिशा प्रदान की, जिससे गृही भक्तों को भी जीवन में प्रेरणा एवं शांति मिले। वे सांसारिक परिवेश में रह कर भी सांसारिक नहीं थीं। श्रीमाँ ने श्रीरामकृष्ण द्वारा इस जगत में छोड़ी गयी सारी आध्यात्मिक शक्तियों को ग्रहण किया तथा उसके द्वारा उन्होने पूरे संघ को अपने सीने से लगाकर उसका पोषण, रक्षण एवं मार्गदर्शन किया।

इस प्रकार वैचारिक दृष्टि से श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ और स्वामी विवेकानन्द एक ही हैं। श्रीरामकृष्ण जिस सत्य के द्रष्टा एवं प्रतिपादक थे, विवेकानन्द उसके प्रवक्ता तथा प्रचारक थे और श्रीमाँ सारदादेवी का जीवन उसी आदर्श का मूर्तस्वरूप था। संघ की सृष्टि स्वयं श्रीरामकृष्ण ने की, उसके परिपालन का भार श्रीमाँ ने अपने ऊपर लिया और विवेकानन्द के हिस्से में उसके प्रवर्तन का गुरु दायित्व पड़ा। समग्र मानव जाति के किसी विशेष प्रयोजन की पूर्ति के लिए एक ही महाशक्ति का वह त्रिविध प्रकाश है।

आंदोलन के दर्शन का विकास विवेकानन्द से हुआ। उन्होंने इस आंदोलन द्वारा होनेवाले कार्य की संक्षेप में घोषणा की—"हमारे जीवन का मुख्य लक्ष्य है आचांडाल प्रत्येक को धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष का अधिकार प्राप्त कराने में सहायता करना।"—संक्षेप में यही रामकृष्ण-विवेकानन्द आंदोलन की सैद्धांतिक पृष्ठभूमि है और इसका मानव जाति के पुनर्निर्माण का यही संपूर्ण विस्तृत प्रयत्न है। इस आंदोलन के प्रधान कार्यालय बेलुड़ मठ की स्थापना के बाद स्वामीजी ने अपने शिष्य शरतचन्द्र चक्रवर्ती से कहा था, "वहाँ से जिस शक्ति का उदय होगा, वह संपूर्ण जगत को आप्लावित कर देगी।" उनकी यह भविष्यवाणी आज पूरी होने की राह पर है। आज बेलुड़-मठ सभी परीक्षित एवं उन्नतिशील सत्यों का विभिन्न धर्मों में एकता का, निस्पक्षता और समन्वय का प्रतीक बन गया है। यहाँ से मानव की उदात्त भावनाएँ—सर्जनात्मक और वैचारिक आदर्श रूप में संपूर्ण विश्व में फैल रही हैं। रामकृष्ण संघ के संन्यासीगण, भारत और विदेशों में, हजारों मनुष्यों की शांत भाव से महान सहायता किये जा रहे हैं।

इस आन्दोलन के माध्यम से स्वामीजी ने एक ऐसे चक्र का प्रवर्तन किया है, जो उच्च एवं श्रेष्ठ विचारों को सबके द्वार-द्वार पहुँचाने का प्रयास करता है। उन्होंने

अद्वैत-वेदान्त को, जो अब तक वन के आश्रमों एवं मठों
तक सीमित था, मानव के दैनिक जीवन में लाना चाहा।
इसके कार्यान्वयन के लिए "जीव शिव है" तथा "आत्मनो
मोक्षार्थं जगद्धिताय च"—ये द्विविध आदर्श रामकृष्ण-मठ
और रामकृष्ण-मिशन को स्वामी विवेकानन्द द्वारा दिये
गये हैं। स्वामीजी चाहते थे कि इन आदर्शों का सहारा
लेकर संन्यासी देश को ऊपर उठाने के लिए आगे आएँ
तथा राष्ट्र-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में काम करें। कर्म
का यह आदर्श रामकृष्ण मिशन द्वारा राष्ट्रीय जीवन के
शिक्षा, चिकित्सा, सेवा, प्राकृतिक प्रकोपों से राहत आदि
विभिन्न क्षेत्रों में व्यवहृत होता है।

मुक्तिमंत्र का गायन करने वाले स्वामी विवेकानन्द
की शक्तिशाली विचारधारा ने निद्रामग्न भारतवासियों
की नस-नस में प्रवाहित होकर नयी आशा-आकांक्षाओं
और प्रेरणाओं को जन्म दिया। इसी के फलस्वरूप भार-
तीय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नव-जागरण की हलचल
तथा राष्ट्र-निर्माण के उद्देश्य से अनेक छोटी-बड़ी राष्ट्रीय
संस्थाओं का उद्भव दिखाई पड़ता है। उन्हीं की प्रेरणा
से भारतीय पराधीनता के युग में सहस्र निःस्वार्थ युवा
स्वदेश-मंत्र में दीक्षित हो अदम्य उत्साह से मुक्तिसंग्राम
में कूद पड़े। यही नहीं, उन्हीं की सर्जनशील प्रतिमा के
प्रभाव से लुप्त-प्राय भारतीय साहित्य, शिल्प, स्थापत्य,
ललितकला, संगीत आदि भी फिर से जीवित हो उठे।
विवेकानन्द के कर्ममय जीवन एवं शक्तिमयी वाणी ने
युगों से संचित मानसिकता को दूर कर जाति की लुप्त
चेतना को जागृत कर दिया। सामाजिक, राजनीतिक,
आर्थिक आदि सभी क्षेत्रों में आज उन्हीं के बिप्लबी
चिन्तन का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। भारत के इस
बहुमुखी जागरण के मूल में विवेकानन्द की अमूल्य देन
को स्वाधीनता संग्राम के अन्यान्य पुरोधा भी मुक्तकंठ से
स्वीकारते हैं। श्री अरविन्द लिखते है—"यदि किसी को
भारत का विराट प्राण-पुरुष माना जा सकता है, तो वह
एकमात्र विवेकानन्द—नरकेशरी विवेकानन्द। मैं
देखता हूँ कि उसके प्रभाव ने भारत की आत्मा को
आलोड़ित कर दिया है। हम तो कहेंगे विवेकानन्द आज
भी अपने देशवासियों की आत्मा में जीवित हैं, देश जननी
की संतानों की आत्मा में जीवित हैं।"

भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री पं० जवाहरलाल नेहरू
कहते हैं—'स्वामीजी ने जो कुछ भी लिखा या कहा है,
वह हमारे हित में है और होना ही चाहिए तथा वह
आने वाले लंबे समय तक हमें प्रभावित करता रहेगा।
वे साधारण अर्थ में कोई राजनीतिज्ञ नहीं थे, फिर भी,
मेरी राय में, वे भारत के राष्ट्रीय आंदोलन के महान
संस्थापकों में से एक थे, और आगे चल कर जिन लोगों
ने उस आंदोलन में थोड़ा या बहुत सक्रिय भाग लिया
उनमें से अनेक के प्रेरणा—स्रोत स्वामी विवेकानन्द थे।
अप्रत्यक्ष रूप से उन्होंने वर्तमान भारत को सशक्त रूप से
प्रभावित किया था और मेरे विचार में तो हमारी युवा-
पीढ़ी स्वामी विवेकानन्द से निःसृत होने वाले ज्ञान,
प्रेरणा और उत्साह के स्रोत से लाभ उठाएगी।"

स्वामीजी ने ऐसे आदर्श राष्ट्र-गठन की कल्पना की
थी जिसमें ब्राह्मणयुग का ज्ञान, क्षत्रियों की सभ्यता,
वैश्यों की प्रसार-शक्ति तथा शूद्रों का साम्य-आदर्श—ये
सब पूरी पूरी मात्रा में बने रहेंगे। पर इनके दोष न
रहेंगे। वे कहते थे कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य युगों की
प्रधानता अब अस्ताचल को चली गयी है, अब तो शूद्र-युग
का आविर्भाव होगा, कोई उसे रोक नहीं सकेगा। इसी-
लिए उन्होंने ब्राह्मण आदि उच्च वर्णों को संबोधित करते
हुए मर्मस्पर्शी भाषा में कहा है—"तुमलोग अपने को
शून्य में विलीन करके अदृश्य हो जाओ और अपने स्थान
में "नवभारत" का उदय होने दो। उसका उदय हल
चलाने वाले किसानों की कुटिया से, मछुए, मोचियों और
मेहतरों की झोपड़ियों से हो। बनिए की दुकान से, भड़-
भूजे की भट्टी के पास से वह प्रकट हो। कारखानों,
हाटों और बाजारों से यह निकले। वह नवभारत अमरा-
इयों और जंगलों से, पहाड़ों और पर्वतों से प्रकट हो।"
आज भारत के गणतांत्रिक राष्ट्र-गठन मे हम क्या इसी
का प्रतिबिम्ब नहीं देखते? उन्होंने और भी कहा है—"मैं

अपने मनश्चक्षुओं से देख रहा हूँ कि भावी सर्वांगपूर्ण भारत वेदान्तिक मस्तिष्क और इस्लामी देह लेकर इस विवाद श्रृंखला को चीरते हुए महामहिमान्वित और अपराजेय शक्ति से युक्त होकर जागृत हो रहा है।" अर्थात् वेदांतिक जिस प्रकार जाति-धर्म का विचार न करते हुए सभी नर-नारियों को एक ही ब्रह्म की अभिव्यक्ति या आत्मस्वरूप समझता है, इस्लाम धर्म का अनुयायी, समाज की दृष्टि से अपने धर्मावलंबियों को उसी प्रकार भ्रातृभाव से देखता है, और उनके साथ तदनुरूप व्यवहार करता है। वेदांत की आत्मिक एकता एवं अभेदत्व पर आधारित साम्य-मैत्री और समदर्शन तथा इस्लाम का सामाजिक-साम्य, भ्रातृत्व और समदर्शित्व ये दोनों मिलकर एक सर्वांगपूर्ण भारत की सृष्टि करेंगे। समन्वयाचार्य श्रीरामकृष्ण की इस्लाम धर्म की साधना की सार्थकता भी इसी में स्पष्ट रूप से सूचित होती है। भारत में यह जो धर्म निरपेक्ष गणतांत्रिक राष्ट्र गठित हुआ है, जिसमें सभी धर्म अपनी अपनी विशिष्टता की रक्षा करते हुए शांतिपूर्वक रह सकते हैं, उसे यदि हम रामकृष्ण विवेकानन्द के सर्व धर्म-समन्वय का ही राष्ट्रीय रूपायन कहें, तो वह कोई अत्युक्ति न होगी।

(क्रमश:)

*

बुद्धि योग (१)

—स्वामी वेदान्तानन्द
रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

श्री मद्भगवद्गीता के अनेक श्लोकों में बुद्धि शब्द का प्रयोग पाया जाता है। यह शब्द किस श्लोक में किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है इसकी विवेचना एक साथ करने पर गीता का अर्थ समझने में सहायता मिलेगी।

गीता के २/३९वें श्लोक में जो 'बुद्धि' शब्द है उसका अर्थ है ज्ञान। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, 'तुम्हें सांख्य अर्थात् विचार द्वारा जो आत्मज्ञान प्राप्त हो, उस ज्ञान के स्वरूप के सम्बन्ध में मैंने तुम्हें ज्ञान का उपदेश दिया। किन्तु तुम यदि इसकी धारणा करने में असमर्थ होओ तो तुम्हें अपनी मानसिक मलिनता दूर करने के लिए योग अर्थात् कर्मयोग का सहारा लेना होगा। उसी कर्म-विषयक बुद्धि अर्थात् ज्ञान का उपदेश देता हूँ। मेरी बातों को मन लगाकर सुनो। इस निष्काम कर्मानुष्ठान के उपाय को सही-सही रूप में समझकर यदि कर्म कर सको तो तुम फिर स्वयं को किसी कार्य का कर्ता नहीं मानोगे, किन्तु 'ईश्वर की इच्छा से परिचालित होकर उनकी प्रीति प्राप्ति के लिए सभी कार्य करता हूँ'—इस प्रकार के मनोभाव से कर्म कर पाने पर स्वयं को पुण्यवान या पापी नहीं मानोगे एवं सभी प्रकार के दुखों के भोग से निस्तार पाओगे। तुम्हारे मन में न तो स्वर्ग-सुख के भोग की कामना जगेगी और न नरक जाने का भय ही होगा।

२/४३वें श्लोक में बुद्धि का विशेषण दिया गया है—'व्यवसायात्मिका'। इस शब्द का अर्थ होता है किसी भी एक विषय-विशेष में एकाग्रता या मनोयोग। कुछ थोड़े से मनुष्य ही विशेष अध्यवसाय के साथ दीर्घ-काल तक प्रयत्न करने के फलस्वरूप अपने विचार को मात्र एक विषय में दीर्घकाल तक लगाये रखने में समर्थ होते हैं। इस प्रकार के एकाग्र बुद्धि सम्पन्न व्यक्ति अपने सारे कर्म ईश्वर की आराधना के रूप में अनुष्ठित करते हुए एवं कर्मों के फल ईश्वर को समर्पण कर शान्ति एवं आनन्द का अनुभव कर सकते हैं, किन्तु जिस व्यक्ति का मन चंचल रहता है उसकी कामना-वासना अनन्त होती है। वह किसी एक वासना की पूर्ति के लिए अनेक उपायों का चिन्तन करता रहता है।

ऐसे चंचल-बुद्धि व्यक्तियों का मन, इस जीवन में एवं मरने के बाद भी, अनेक प्रकार के सुख-भोग एवं शक्ति-प्राप्ति के चिन्तन में अभिभूत रहता है। ऐसे व्यक्ति मानव जीवन के प्रकृत उद्देश्य का निर्णय एवं ईश्वर का चिन्तन करने में असमर्थ होते हैं। (२/४४)

गीता में एकनिष्ठा शुद्ध बुद्धि की विशेष प्रशंसा की गयी है। २/४९ वें श्लोक में 'बुद्धि योग' शब्द का व्यवहार किया गया है। शुद्ध बुद्धि आत्मा या ईश्वर के साथ युक्त होने का—आत्मा के स्वरूप का अनुभव करने, ईश्वर का दर्शन करने का एक उपाय है। इस बुद्धियोग के अतिरिक्त किसी प्रकार के योग से सिद्धि प्राप्ति संभव नहीं होती। इस श्लोक में श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं—फलकामना त्यागपूर्वक ईश्वर की प्रीति प्राप्ति के उद्देश्य से कर्मानुष्ठान बुद्धिमान व्यक्ति को अवश्य करना चाहिए। जो फलों की कामना लेकर कर्म करते हैं, उनकी बुद्धि अत्यन्त हीन होती है। निष्काम कार्य शुद्ध बुद्धि की प्राप्ति का एक उपाय है। तुम बुद्धि की एकाग्रता के साधन में रत होओ।

जिस व्यक्ति की बुद्धि स्थिर हो गयी है, जो देह, इन्द्रिय और मन के द्वारा जितने कार्य करते है उन सब

को ईश्वर की आराधना मानते हैं। उनको सुख की कामना नहीं रहने के कारण, वे जितने कर्म करते हैं सब सत् कर्म होते हैं और, ऐसे व्यक्ति के द्वारा असत् कर्म करना संभव नहीं होने के कारण उन्हें दुःख के भोग का भी भय नहीं रहता। वे इसी जीवन में परम शान्ति और आनन्द का अनुभव करते हैं। कर्म के साधारणतः दुःख और भय का कारण होने पर भी, ईश्वर की सेवा-बुद्धि लेकर जो कार्य किया जाता है उससे कोई विपत्ति नहीं आती। इस प्रकार निष्काम भाव से कर्म करना ही कर्म करने का यथार्थ कौशल होता है। कौशल कहने से किसी प्रकार की चालाकी नहीं समझी जाती। चालाकी के साथ-फाँकीबाजी करने की दुष्ट बुद्धि जुड़ी रहती है।

उपनिषद् एवं गीता में 'इह' (इस जीवन में) शब्द पर विशेष जोर दिया गया है। सत् कार्य या साधन-भजन, जो कुछ करने योग्य है उसे इस जीवन में ही करके मानव-जन्म को सफल करना होगा। (२/५०)

कर्म मनुष्य को अधिकांश समय अनेक प्रकार के सांसारिक सुख-दुखों में बाँध देता है। किन्तु, फिर कर्म ही किस प्रकार किये जाने पर मनुष्य को सदा के लिए जन्म-मरण के भय से मुक्त कर सकता है वह उपाय २/५१वें श्लोक में बताया गया है। समत्व बुद्धि से सम्पन्न व्यक्ति, जिनके हृदय से आशा, भय और लोभ पूर्णरूप से समाप्त हो गये हैं, कोई कार्य फल की कामना से नहीं करते। निष्काम भाव से कर्म करने में समर्थ ऐसे व्यक्ति को यथार्थ मनीषी या ज्ञानी कहा जाता है। अनेक जटिल तत्त्वों को समझ पाने से ही या अनेक विषयों को जानने पर भी मनुष्य मनीषी या ज्ञानी नहीं होता। ऐसे व्यक्ति किसी कर्म के फलस्वरूप बार-बार जन्म-मरण का दुःख नहीं भोगते, किन्तु चिर शान्ति की प्राप्ति करते हैं।

पूर्ण रूप से वासना का त्याग कर कर्म करने से वह कर्म ईश्वर प्राप्ति की साधना में परिणत हो जाता है— यह कहा जा चुका है। मन की कैसी अवस्था होने पर ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है, यह बात २/५२-५३ इन दो श्लोकों में कही गयी है। जब बुद्धि की मलिनता पूरी तरह दूर होगी, जब शरीर से 'मैं-मेरा' का बोध नष्ट होगा, तब सभी विषयों में वैराग्य का उदय होगा। सांसारिक विभिन्न सत्कर्मों के जो सुख लाभ होते हैं, अथवा स्वर्ग में अनेक सुख-भोगों के विषय में, जो सब बातें शास्त्रों से ज्ञात होती हैं— इन दोनों प्रकार के सुखों के प्रति किसी प्रकार के आकर्षण का अनुभव नहीं होगा।

इस लोक एवं परलोक में अनेक प्रकार की सुख-प्राप्ति की बातें सुन-सुनकर मनुष्य का मन उन सब सुखों के लिए लालायित हो जाता है। वास्तविक वैराग्य की उत्पत्ति के फलस्वरूप वह लालसा दूर हो जाती है। केवल उसी अवस्था में ईश्वर में दृढ़ विश्वास और भक्ति उत्पन्न होती है। 'ईश्वर-प्राप्ति ही मानव जीवन का एकमात्र उद्देश्य है', इस प्रकार की धारणा दृढ़ होती है। इस अवस्था में मन फिर किसी विषय में आकृष्ट नहीं होता। २।५३ वें श्लोक में व्यवहृत 'योगम्' शब्द का अर्थ, ईश्वर के साथ सर्वदा युक्त होने का साधन, तत्त्वज्ञान है। तत् शब्द का अर्थ वह (ईश्वर या आत्मा) है, तत्त्वज्ञान कहने से भी आत्मा या ईश्वर विषयक ज्ञान ही जाना जाता है।

किसी इन्द्रिय के लिए प्रीतिकर विषय का चिन्तन करने के फलस्वरूप मनुष्य का विचार-विवेचन किस तरह नष्ट हो जाता है वह बात गीता के २।६२-६३ वें श्लोक में कही गयी है। इन्द्रिय के लिए प्रिय रूप-रस आदि किसी विषय के चिन्तन से उस विषय को पाने एवं भोग करने का आग्रह प्रबल होता है। उस वासना की परि-तृप्ति के सम्बन्ध में किसी बाधा के उपस्थित होने से मन में क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अभिभूत होने पर, मनुष्य ने सदाचरण के सम्बन्ध में जितनी बातें सुनी थीं तथा विचार के फलस्वरूप कर्त्तव्य विषयक जो सिद्धान्त स्थिर हुए थे, उन सबको वह भूल जाता है। इस प्रकार स्मृतिभ्रंश होने के फलस्वरूप उसकी बुद्धि का नाश हो जाता है। वह ज्ञानहीन हो जाता है। बुद्धि के नाश होने पर सर्वनाश होने के लिए कुछ शेष नहीं रह जाता। बुद्धि नष्ट होने से मनुष्य पशु के समान हीन आचरण में प्रवृत्त हो जाता है।

२/६५-६६वें श्लोक में बुद्धि शब्द ज्ञान के अर्थ में व्यवहृत हुआ है। पूर्ववर्ती २/६४वें श्लोक में कहा गया है कि विचार के द्वारा एवं इन्द्रिय संयम के अभ्यास के फलस्वरूप रूप-रस आदि विषयों के प्रति इन्द्रियों का स्वाभाविक आकर्षण यदि नष्ट हो जाय तो उन आसक्तियों एवं विक्षेप से रहित इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण करने पर भी संयत चित्त व्यक्ति शान्ति लाभ करते हैं। इस प्रकार के शान्तचित्त व्यक्ति फिर किसी सांसारिक कर्म से दुःख-भोग नहीं करते। उनके अपने स्वरूप विषयक ज्ञान में कभी हिल-डोल नहीं होता। (क्रमशः)

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय

अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

अब मैं जिस घटना का उल्लेख करने जा रहा हूं, वह १८८२ ई० में घटित हुई थी। एक दिन बड़ा परिश्रम करने के पश्चात् (उस दिन दक्षिणेश्वर में खूब संकीर्तन हुआ था) रात में ठाकुर को पंखा झलते समय लाटू ऊंघ रहा था। लाटू को निद्रालु देखकर ठाकुर हंसते हुए बोले —"अरे लेटो, क्या तू बता सकता है कि भगवान् सोते हैं या नहीं ?"

ठाकुर का यह प्रश्न सुनकर लाटू तो अवाक् रह गये और विस्मित स्वर में बोले—"मैं तो नहीं जानता।"

इस पर ठाकुर गम्भीरतापूर्वक बोले—"अरे ! सभी सो सकते हैं, जीव-जगत् में सभी निद्रा के अधीन हैं परन्तु भगवान् को सोने का अवसर नहीं है। वे सारे दिन सारी रात जागकर जीव-जन्तुओं की सेवा करते रहते हैं, तभी तो जीव-जन्तु निर्भय होकर सो सकते हैं।" ठाकुर की बात सुनकर लाटू पूछ बैठा—"वे जीव-जन्तुओं की सेवा कर रहे हैं और जीव-जन्तु उन्हीं की सेवा ग्रहण कर सो रहे हैं ?"

ठाकुर—"हां रे, ठीक वैसा ही है। जीव-जन्तुओं को सुलाकर वे जगे रहते हैं।"

इसके बाद क्या बातें हुई थी यह हमें लाटू महाराज ने नहीं बताया। इतना कहकर ही वे मौन हो गये मानो अतीत की कोई घटना अचानक ही उनके मनश्चक्षु के समक्ष उद्भासित हो उठी हो। वह दृश्य जैसा मधुर था, वैसा ही करुण भी था। तीन घण्टे तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त भी उस दिन भक्त को उनसे और कुछ भी सुनने को नहीं मिला था।

१८८२ ई० में एक और घटना हुई। ठाकुर जहां कहीं भी जाते तो सेवक लाटू उनके साथ रहता और ठाकुर का गमछा, बटुआ आदि जरूरत की सारी चीजें उसे साथ ले जानी पड़ती थी। एक बार इस कार्य में लाटू से गलती हो गयी। गमछा और बटुआ साथ लिये बिना ही लाटू ठाकुर के संग चल पड़ा। भक्त के घर पहुंचकर लाटू को अपनी भूल समझ में आयी और अत्यन्त खेदपूर्वक उसने यह बात ठाकुर को बतायी। इस पर ठाकुर लाटू पर नाराज हुए और उस भक्त के घर ही उन्हें खरी-खोटी सुनाने लगे—'क्यों रे लेटो ! तेरा मन इतना भुलक्कड़ है कि तू इतनी साधारण सी चीज लाना भी भूल गया। मेरे तो कमर में कपड़ा तक नहीं ठहरता, तो भी कभी वे चीजें लेना नहीं भूलता। तेरे ऐसे भुलक्कड़ मन से कैसे काम चलेगा, बेटा ?"

इसके बाद वे और क्या कहते, पता नहीं परन्तु ठाकुर इतना कहकर ही चुप हो गये। ठाकुर की इस नाराजगी पर लाटू अत्यन्त डर गये और सामने ही अपने मालिक श्री राम दत्त को उपस्थित देखकर अश्रुपूर्ण नेत्रों के साथ उनसे कहने लगे—"मैं अब एसी गलती नहीं करूंगा। एक बार उन्हें…।" वे आगे कुछ बोल न सके। लज्जाप्रसूत क्रन्दन के नि:स्वास ने उनका कण्ठ अवरुद्ध कर दिया।

भक्तों में से बहुतों ने इसके पूर्व कभी भी ठाकुर का ऐसी गम्भीर रूप नहीं देखा था। इसलिए वे लोग ठाकुर की इस गम्भीरता को नजरन्दाज नहीं कर सके। अस्तु, वरिष्ठ भक्त रामबाबू तथा मनोमोहन बाबू के अनुनय-

विनय पर ठाकुर प्रसन्न हुए और उस बार लाटू को क्षमा कर दिया।

इसके बाद की एक घटना है। सेवक लाटू परमहंसदेव के साथ भक्त ज्ञान चौधरी के घर गये। वहाँ पर अनेक भक्त आये हुए थे, जिनमें इन्देश के गौरी पण्डित भी थे। (पण्डितों में ये ही सर्वप्रथम हैं जिन्होंने श्रीरामकृष्ण को महापुरुष के रूप में पहचाना और ठाकुर ने कृपा करके उनकी पाण्डित्य की विभूति का हरण कर लिया था।) इसी उत्सव में गौरी पण्डित के साथ सेवक लाटू का प्रथम परिचय हुआ। लाटू ने उनसे एक बहुमूल्य उपदेश सुना था, परवर्तीकाल में उन्होंने हम लोगों को बताया था—"गौरी पण्डित क्या कहता था जानते हो? स्वयं अनुभूति करने और पुस्तकें पढ़ने में बड़ा फरक है। पुस्तकें पढ़ने से मनुष्य की मूर्खता दूर नहीं होती, जब तक मनुष्य के भीतर उनका (भगवान् का) आलोक नहीं पड़ता, तब तक उसके लिए ज्ञानप्राप्ति असम्भव है। उनका प्रकाश आते ही सारा अन्धकार दूर हो जाता है, सम्पूर्ण मूर्खता नष्ट हो जाती है, यहाँ तक कि उनके आलोक से केवल सत्य वस्तु की ही उपलब्धि होती है।"

उसी वर्ष से दक्षिणेश्वर में परमहंसदेव के जन्मोत्सव का अनुष्ठान होने लगा था। ठाकुर के जन्मोत्सव का सारा व्यय भार भक्तगण ही वहन किया करते थे और उनमें भी भक्त सुरेश मित्र और डॉक्टर राम दत्त का योगदान सर्वाधिक रहा करता था। उस दिन लाटू को बड़ा दौड़-धूप करना पड़ता था। सारे दिन के कठोर परिश्रम के बाद लाटू जब सन्ध्या को विश्राम करने जा रहा था, भक्त मनोमोहन बाबू ने उसी समय उसे किसी कार्य का भार सौंप दिया। लाटू ने भी उसे आनन्दपूर्वक ही पूरा कर दिया था। परन्तु उसके बाद ही ठाकुर ने उसे कलकत्ते के एक भक्त के घर जाने को कहा। वे भक्त जन्मोत्सव में भाग लेने को दक्षिणेश्वर न आ सके थे। इसीलिए अहैतुक कृपासिन्धु ठाकुर ने अपने सेवक के हाथ उनके घर प्रसाद भेज दिया। इस पर भी लाटू को जरा-सी भी नाराजगी का बोध नहीं हुआ। भक्त के घर जाकर लाटू का उसी रात लौटना नहीं हुआ था, उन्होंने वहीं रात बितायी। अगले दिन उनकी नरेन्द्रनाथ के साथ निम्नलिखित बातें हुई थी।

नरेन्द्रनाथ (अर्थात् स्वामी विवेकानन्द) तब बीच-बीच में दक्षिणेश्वर जाया करते थे। इसीलिए ठाकुर के सेवक लाटू को वहाँ उपस्थित देखकर नरेन्द्रनाथ ने पूछा—" इतनी सुबह-सुबह कहाँ से आया रे? वहाँ का क्या समाचार है?

लाटू—"कल वहाँ पर कितना उत्सव हुआ! आप गये क्यों नहीं? आपको वे बहुत खोज रहे थे। मेरे साथ आप वहाँ चलिए। वे आपको देखना चाहते हैं।"

नरेन—"मेरे पास अभी वहाँ जाने का समय नहीं है। परीक्षा सिर पर है, अभी क्या पगले बाम्हन के साथ समय बिता सकूँगा?"

लाटू (थोड़ा विस्मय के साथ)—"किसे आपने पगला बाह्मन कहा है? वे तो पगले नहीं हैं! उनके समान और कौन अपना सिर ठीक रख सकता हैं?

नरेन (हँसते हुए)—"इसीलिए तो उनकी कमर पर कपड़ा नहीं टिकता, हाथ-पाँव टेढ़े हो जाते हैं, नाम सुनते ही नाचने लगते हैं, थोड़ा भी मान-इज्जत नहीं है, जहाँ तहाँ निर्वस्त्र जाते-आते हैं। फिर उधर जादू भी दिखाते रहते हैं—किसी को हिप्नोटाइज कर रहे हैं तो किसी को मेस्मेराइज कर रहे हैं। और भी कितना सब है (क्रमशः)

श्रीरामकृष्ण का सार्ध शताब्दी समारोह रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन का शताब्दी-उत्सव

सन् १९८६ में श्रीरामकृष्ण के अवतरण के १५० वर्ष पूरे हो गये। रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण मिशन की स्थापना के भी १०० वर्ष पूरे हुए। त्रिबार धन्य यह वर्ष स्वभावतः श्रीरामकृष्ण के भक्तों एवं अनुरागियों के लिए बड़े हर्ष-उल्लास एवं आनन्द का वर्ष है। इस पुनीत अवसर पर विश्वविख्यात रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के अखिल विश्व में फैले सभी केन्द्रों एवं विभिन्न स्वतंत्र संस्थाओं ने बड़े उत्साह से विभिन्न आकर्षक आयोजन किये। इन आयोजनों में बच्चों एवं युवक-युवयियों की विभिन्न प्रतियोगिताओं के साथ ही श्रीरामकृष्ण, श्री माँ सारदा एवं स्वामी विवेकानन्द के जीवन एवं संदेश के विभिन्द पहलुओं पर साधुओं एवं विद्वानों के व्याख्यानों के भी आयोजन किये गये। साथ ही श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा एवं स्वामीजी के जीवन से संबंधित आकर्षक चित्र-प्रदर्शनियों, चलचित्र प्रदर्शनों एवं अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रमों के भी आयोजन किये गये। यहाँ कुछ प्राप्त प्रतिवेदन प्रस्तुत हैं।

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

वाराणसी। स्थानीय रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम में १ से ८ मार्च तक श्रीरामकृष्ण की सार्ध शताब्दी एवं रामकृष्ण मठ एवं मिशन की शताब्दी सोल्लास मनायी गयी। १ मार्च को अद्वैत आश्रम में विशेष पूजा-हवन के साथ श्रीरामकृष्ण के जीवन और संदेश पर व्याख्यान हुए। सेवाश्रम में २ मार्च को प्रो० विश्वेश्वर चक्रवर्ती की अध्यक्षता में आयोजित जन-सभा में 'श्रीरामकृष्ण के संदेश और विश्व एकता' पर डॉ० केदारनाथ लाभ (हिन्दी), प्रो० जी० वी० मोहन थम्पी (अँग्रेजी) और स्वामी रुद्रात्मानन्द (बंगला) ने विचारोत्तेजक व्याख्यान दिये। आरंभ में सेवाश्रम के सचिव स्वामी सत्वानन्द जी ने १९८५-८६ का प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। पं० बलवन्त राय भट्ट ने शास्त्रीय संगीत और भजन प्रस्तुत किये। डॉ० आशीष बनर्जी ने धन्यवाद-ज्ञापन किया।

३ मार्च को 'युवा दिवस' का आयोजन श्रीरोहित मेहता की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। शिक्षा और "स्वामी विवेकानन्द की प्रासंगिकता' पर छात्र छात्राओं ने भाषण किये तथा प्रायः १ दर्जन युवक-युवतियों के प्रश्नों के उत्तर हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो० के० पी० सिंह तथा राजेन्द्र कॉलेज, छपरा के डॉ० केदारनाथ लाभ ने दिये। डॉ० लाभ के उत्तरों की बड़ी सराहना की गयी।

श्री रोहित मेहता के अध्यक्षीय भाषण ने सब को विमुग्ध कर दिया। पं० महादेव मिश्र के संगीत और भजन के साथ सभा का समापन हुआ।

४ मार्च को स्वामी लोकेश्वरानन्द की अध्यक्षता में 'भारत और विदेशों में रामकृष्ण विवेकानन्द भावान्दोलन' विषय पर आयोजित सभा में डॉ० शिव प्रसाद सिंह (हिन्दी) स्वामी हर्षानन्द (अंग्रेजी) और स्वामी आत्मानन्द (हिन्दी) ने व्याख्यान दिये। स्वामी हर्षानन्द और स्वामी आत्मानन्द के व्याख्यानों में व्यक्त विचारों की मौलिकता ने सबको भाव विभोर कर दिया। फिर अध्यक्षीय भाषण की सबने मुक्त कंठ से सराहना की। अंत में 'रानी रासमणि' नामक बंगला फिल्म प्रदर्शित हुई।

५ मार्च को 'विज्ञान और धर्म' विषय पर व्याख्यान दिये गये। अध्यक्ष थे स्वामी लोकेश्वरानन्द और वक्ता थे प्रो० के० पी० सिंह, स्वामी हर्षानन्द और स्वामी आत्मानन्द। आज भी अध्यक्षीय के भाषण के साथ सभी स्वामीजीओं के भाषण बड़े गंभीर, विश्लेषणामक और मर्मस्पर्शी थे।

६ मार्च को अंतर्धर्म सभा हुई। इसमें स्वामी आत्मनन्द (हिन्दू धर्म), डॉ० सागरमल जैन (जैन धर्म) भिक्षु डी० रेवथ थेरो (बुद्ध धर्म) हाजी अब्दुल रशीद (इस्लाम) तथा फादर ईस्वर प्रसाद (ईसाई धर्म) ने अपने विचार प्रस्तुत किये। अध्यक्ष थे श्री रोहित मेहता।

७ मार्च को 'संघ के सम्बन्ध में विवेकानन्द की धारणा' विषय पर सभा हुई। मुख्य वक्ता थे काशी नरेश श्री विभूति नारायण सिंह। वक्ता थे स्वामी ब्रह्मेशानन्द (हिन्दी) तथा श्री प्रणवेश चक्रवर्ती (बंगला)। अध्यक्ष थे प्रो० विश्वेश्वर गाँगुली।

८ मार्च को अद्वैत आश्रम में आयोजित सभा का विषय था विश्व-माजवत्व के संदर्भ में श्रीरामकृष्ण के उपदेश' अध्यक्ष थे— स्वामी श्रीधरानन्दजी। वक्ता थे स्वामी ब्रह्मेशानन्द (हिन्दी), श्री प्रणवेश चक्रवर्ती (बंगला) तथा स्वामी नित्य सत्यानन्द (अंग्रेजी)

श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम, छपरा

छपरा : स्थानीय श्रीरामकृष्ण अद्भुतानन्द आश्रम में श्रीरामकृष्ण देव की १५० वीं० जयन्ती गंगा सिंह कॉलेज के प्रधानाचार्य श्री कैलासपति प्रसाद सिंह की अध्यक्षता में उल्लास पूर्वक मनायी गयी। मुख्य वक्ता थीं जगदम कॉलेज के हिन्दी विभाग की रीडर डॉ० श्रीमती उषा वर्मा। विषय था—श्रीरामकृष्ण : जीवन और संदेश। श्रीराम प्रताप सिंह, प्रधानाध्यापक, जैंतपुर उच्चविद्यालय ने विषय का उप स्थापन किया। प्रारंभ में श्रीश्याम किशोर ने भजन-गायन किया। धन्यवाद-ज्ञापन किया रिविलगंज के प्रखंड शिक्षा प्रसार पदाधिकारी श्री व्रजमोहन प्रसाद सिन्हा ने।

इस अवसर पर विशेष आरती, पूजा हवन, वेद-पाठ के अतिरिक्त, प्रायः एक हजार दरिद्र नारायणों में प्रसाद का वितरण भी किया गया।

Faith, faith, faith in ourselves, faith, faith in God—this is the secret of greatness.

—Swami Vivekananda

स्वामी विवेकानन्द कृत सम्पूर्ण साहित्य

योग

ज्ञानयोग	१०.००
राजयोग (पातंजल योगसूत्र, सूत्रार्थ और व्याख्या सहित)	९.००
प्रेमयोग	५.००
कर्मयोग	६.००
भक्तियोग	४.००
ज्ञानयोग पर प्रवचन	२.००
सरल राजयोग	२.००

धर्म तथा अध्यात्म

धर्मविज्ञान	५.००
धर्मतत्त्व	४.००
धर्मरहस्य	५.००
हिन्दूधर्म	४.५०
हिन्दू धर्म के पक्ष में	२.००
शिकागो वक्तृता	१.००
नारद-भक्ति-सूत्र एवं भक्तिविषयक प्रवचन और आख्यान	३.००
भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्‌गीता	४.५०
भगवान बुद्ध का संसार को संदेश एवं अन्य व्याख्यान और प्रवचन	६.००
देववाणी (उच्च आध्यात्मिक उपदेश)	८.००
कवितावली (आध्यात्मिक अनुभूतिमय काव्य)	४.००
वेदान्त	४.२५
व्यावहारिक जीवन में वेदान्त	३.५०
आत्मतत्त्व	३.००
आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग	५.००
मरणोत्तर जीवन	१.५०

जीवनी

महापुरुषों की जीवनगाथाएँ	६.००
मेरे गुरुदेव	२.००
ईशदूत ईसा	१.००
पवहारी बाबा	१.८०

सम्भाषणात्मक

विवेकानन्दजी के संग में	११.००
स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप	५.००
विवेकानन्दजी की कथाएँ	५.००
विवेकानन्दजी के सान्निध्य में	३.००

विविध

विवेकानन्द-संचयन—(महत्वपूर्ण व्याख्यान, लेख-पत्र काव्य आदि का प्रातिनिधिक संचयन)	२१.००
पत्रावली—(धर्म, दर्शन, शिक्षा, समाज, राष्ट्रोन्नति इत्यादि सम्बन्धी स्फूर्तिदायी पत्र)(सजिल्द)	२६.००
(अजिल्द)	२१.००
भारत में विवेकानन्द, (भारत में दिए हुए व्याख्यानों का संकलन)	२०.००
भारत का ऐतिहासिक क्रमविकास एवं अन्य प्रबन्ध	४.००
हमारा भारत	१.५०
स्वाधीन भारत ! जय हो !	४.००
वर्तमान भारत	१.८०
नया भारत गढ़ो	२.५०
भारतीय नारी	४.००
जाति, संस्कृति और समाजवाद	४.००
शिक्षा	५.५०
सार्वलौकिक नीति तथा सदाचार	३.५०
मन की शक्तियाँ तथा जीवन-गठन की साधनाएँ	१.५०
विविध प्रसंग	४.५०
चिन्तनीय बातें	४.००
परिव्राजक (मेरी भ्रमणकहानी)	४.५०
प्राच्य और पाश्चात्य	३.५०
युवकों के प्रति	६.००
विवेकानन्द—राष्ट्र को आह्वान (पॉकेट साईज)	१.२५
विवेकानन्दजी के उद्‌गार (,,)	१.००
शक्तिदायी विचार (,,)	१.००
सूक्तियाँ एवं सुभाषित (,,)	१.००
मेरी समर-नीति (,,)	१.००
मेरा जीवन तथा ध्येय (,,)	१.००

विस्तृत सूचीपत्र के लिए लिखें :

रामकृष्ण मठ (प्रकाशन विभाग)

धनतोली, नागपुर—४४००१२

बैद्यनाथ च्यवनप्राश
अब पोलीजार मे
उपलब्ध
स्फूर्ति
कफ खांसी नाशक
यौवन
दिमागी ताजगी
विकास
बलवर्द्धक
बैद्यनाथ
च्यवनप्राश
अवलेह स्पेशल
मकरध्वज.अभ्रक.केशर युक्त
श्वासकास और त्रिदोषनाशक
पटना-८००००१
आदर्श आयुर्वेदिक
पारिवारिक टानिक
कहीं आपके डिब्बे में "मोपेड" तो नहीं ?
प्रत्येक एक किलो स्पेशल और साधारण एवं ५०० ग्राम स्पेशल च्यवनप्राश के डिब्बे में इनामी कूपन प्राप्त कर "मोपेड" एवं ३०५ अन्य पुरस्कार प्राप्त करने का सुनहरा अवसर ।
बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-१
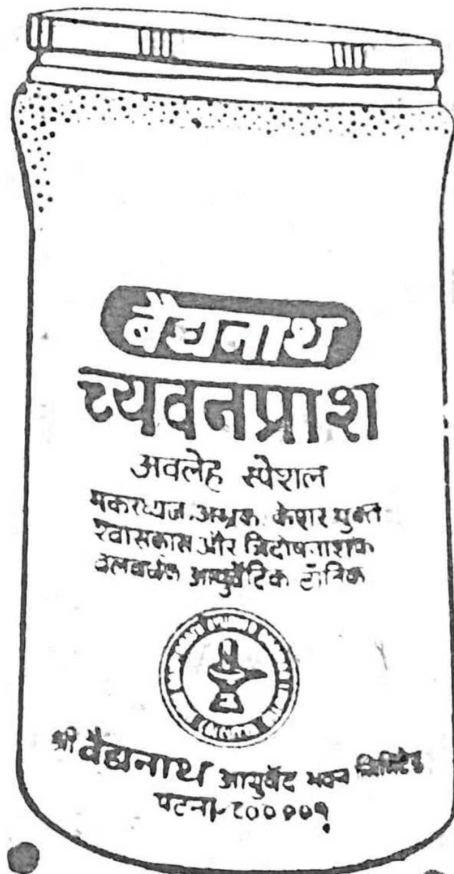
डाक पंजीयित संख्या—सी० एच० पी०—१४-८३ अंक ४—११.८५

विवेक वाणी

सबको ही ऋषि होना होगा

कल्पना करो कि यहाँ कुछ जातियाँ हैं; जिनमें हर एक की जन-संख्य दस हजार है। अगर ये सब इकट्ठी होकर अपने को ब्राह्मण कहने लगें तो इन्हें कौन रोक सकता है ? ऐसा मैंने अपने ही जीवन में देखा है। कुछ जातियाँ जोरदार हो गयीं, और ज्यों ही उन सब की एक राय हुई, फिर उनसे 'नहीं' भला कौन कह सकता है ?—क्योंकि और कुछ भी हो, हर एक जाति दूसरी जाति से सम्पूर्ण पृथक है। कोई जाति किसी दूसरी जाति के कामों में, यहाँ तक कि एक जाति की भिन्न भिन्न शाखाएं भी एक दूसरे के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करतीं। और शंकराचार्य आदि शाक्तिशाली युग-प्रवर्तक ही बड़े-बड़े वर्ण-निर्माता थे। उन लोगों ने जिन अद्भुत बातों का आविष्कार किया था, वे सब मैं तुमसे नहीं कह सकता, और संभव हैं कि तुममें से कोई-कोई उससे अपना रोष प्रकट करे। किन्तु अपने भ्रमण और अनुभव से मैंने उनके सिद्धांत ढूंढ़ निकाले, और इससे मुझे अद्भुत परिणाम प्राप्त हुए। कभी-कभी उन्होंने दल के दल बलूचियों को लेकर क्षग भर में उन्हें क्षत्रिय बना डाला, दल के दल धीवरों के लेकर क्षण भर में ब्राह्मण बना दिया। सब ऋषि-मुनि थे और हमें उन की स्मृति के सामने सिर झुकाना होगा। तुम्हें भी ऋषि-मुनि बनाना होगा, कृतकार्य होने का यही गूढ़ रहस्य है। न्यूनाधिक सबको ही ऋषि होना होगा। ऋषि के क्या अर्थ हैं ? ऋषि का अर्थ है पवित्र आत्मा। पहले पवित्र बनो, तभी तुम शक्ति पाओगे। 'मैं ऋषि हूँ', कहने मात्र ही से न होगा, किन्तु जब तुम यथार्थ ऋषित्व लाभ करोगे तो देखोगे, दूसरे आप ही आप तुम्हारी आज्ञा मानते हैं। तुम्हारे भीतर से कुछ रहस्यमय वस्तु निःसृत होती है, जो दूसरों को तुम्हारा अनुसरण करने को बाध्य करती है, जिससे वे तुम्हारी आज्ञा का पालन करते हैं। यहाँ तक कि अपनी इच्छा के विरुद्ध अज्ञात भाव से वे तुम्हारी योजनाओं की कार्यसिद्धि में सहायक होते हैं। यही ऋषित्व है।

(विवेकानन्द साहित्य : पंचम भाग : पृष्ठ १८६)

आनन्द डाइजेस्ट
पारिवारिक मासिक पत्रिका
के सौजन्य से
श्री हिमालय प्रेस में कवर मुद्रित

मूल्य : २.५०

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं श्रीकांत झा द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना—४ में मुद्रित।